विविध चिकित्सा-पद्धतियाँ

[मानवशरीर परमात्म प्रभुकी एक सर्वश्रेष्ठ कृति है, जिसे स्वस्थ एवं नीरोग रखना प्रत्येक मनुष्यका प्रथम कर्तव्य एवं धर्म है। वर्तमान समयमें जीवनकी जटिलताएँ इतनी बढ़ती जा रही हैं कि मनुष्य विभिन्न शारीरिक एवं मानसिक रोगोंसे आक्रान्त हो रहा है। जहाँ जनजीवनमें सामान्यत: नये-नये रोग विकसित हो रहे हैं, वहीं चिकित्सा-पद्धतियोंका भी विस्तार हो रहा है। एक रोगका उपचार दूसरे अन्य रोगोंको जन्म दे देता है और ओषधियोंकी संख्या भी बढ़ रही है।

*प्राचीन कालसे भारतमें विभिन्न चिकित्सा-पद्धतियाँ प्रचलित हैं, रोगोंके विस्तार होनेके कारण कुछ नयी पद्धतियाँ भी सामने आ रही हैं तथा सभी चिकित्साशास्त्रोंके पृथक्-पृथक् गुण और दोष भी हैं। कुछ पद्धतियाँ ऐसी हैं, जिनसे रोग तो शीघ्र ठीक हो जाते हैं, परंतु उनमें स्थायित्व नहीं रहता। कुछ ऐसी भी पद्धति है, जिसके उपचारसे निर्दिष्ट रोग तो ठीक हो जाता है, पर दूसरा रोग पनप जाता है, पर इसके साथ ही भारतकी प्राचीन चिकित्सा-पद्धतियोंमें ऐसे भी उपचार हैं, जो रोगके गुण-दोषोंको साम्यावस्थामें लाकर स्थायी लाभ एवं आरोग्य प्रदान करते हैं। हम यहाँ जन-सामान्यकी जानकारीके लिये चिकित्साकी विभिन्न पद्धतियोंको प्रस्तुत कर रहे हैं।—**सं०**]*

स्वर-विज्ञान और बिना औषध रोगनाशके उपाय

(परिव्राजकाचार्य परमहंस श्रीमत्स्वामी निगमानन्दजी सरस्वती)

विश्वपिता विधाताने मनुष्य-जन्मके समयमें ही देहके साथ एक ऐसा आश्चर्यजनक कौशलपूर्ण अपूर्व उपाय रच दिया है, जिसे जान लेनेपर सांसारिक, वैषयिक किसी भी कार्यमें असफलताका दु:ख नहीं हो सकता। हम इस अपूर्व कौशलको नहीं जानते, इसी कारण हमारा कार्य असफल हो जाता है, आशा भङ्ग हो जाती है, हमें मनस्ताप और रोग भोगना पड़ता है। यह विषय जिस शास्त्रमें है, उसे स्वरोदयशास्त्र कहते हैं। यह शास्त्र जितना दुर्लभ है, उतना ही स्वरके ज्ञाता गुरुका भी अभाव है। यह शास्त्र प्रत्यक्ष फल देनेवाला है। मुझे पद-पदपर इसका प्रत्यक्ष फल देखकर आश्चर्यचकित होना पड़ा है। यद्यपि समग्र स्वरोदयशास्त्र ठीक-ठीक लिपिबद्ध करना बिलकुल असम्भव है तथापि मात्र साधकोंके कामकी कुछ बातें यहाँ संक्षेपमें दी जा रही हैं—

स्वरोदयशास्त्र सीखनेके लिये श्वास-प्रश्वासकी गतिके सम्बन्धमें सम्यक् ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। इस शास्त्रका वचन है—'**कायानगरमध्ये तु मारुतः क्षितिपालकः।**' यानी 'देहरूपी नगरमें वायु राजाके समान है।' प्राणवायु 'नि:श्वास' और 'प्रश्वास'—इन दो नामोंसे पुकारा जाता है। वायु ग्रहण करनेका नाम 'नि:श्वास' और वायुके परित्याग करनेका नाम 'प्रश्वास' है। जीवके जन्मसे लेकर मृत्युके अन्तिम क्षणतक निरन्तर श्वास-प्रश्वासकी क्रिया होती रहती है। यह नि:श्वास दोनों नासापुटों—नासिकाके दोनों छिद्रोंसे एक ही समय एक साथ समानरूपसे नहीं चला करता, कभी बायें और कभी दायें पुटसे चलता है। कभी-कभी एकाध घड़ीतक एक ही समय दोनों नासापुटोंद्वारा समानभावसे श्वास प्रवाहित होता है।

बायें नासापुटके श्वासको इडामें चलना, दाहिनी नासिकाके श्वासको पिंगलामें चलना और दोनों नासापुटोंसे एक समान चलनेपर उसे सुषुम्णामें चलना कहते हैं। एक नासापुटको दबाकर दूसरेके द्वारा श्वासको बाहर निकालनेपर यह साफ मालूम हो जाता है कि एक नासिकासे सरलतापूर्वक श्वास-प्रवाह चल रहा है और दूसरा नासापुट मानो बंद है अर्थात् उससे दूसरी नासिकाकी तरह सरलतापूर्वक श्वास बाहर नहीं निकलता। जिस नासिकासे सरलतापूर्वक श्वास बाहर निकलता हो, उस समय उसी नासिकाका श्वास कहना चाहिये। किस नासिकासे श्वास बाहर निकल रहा है, इसे पाठक उपर्युक्त प्रकारसे समझ सकते हैं। क्रमश: अभ्यास होनेपर बहुत आसानीसे मालूम होने लगता है कि किस नासिकासे नि:श्वास प्रवाहित होता है। प्रतिदिन प्रात:काल सूर्योदयके समयसे ढाई-ढाई घड़ीके हिसाबसे एक-एक नासिकासे श्वास चलता है। इस

प्रकार रात-दिनमें बारह बार बायीं और बारह बार दायीं नासिकासे क्रमानुसार श्वास चलता है। किस दिन किस नासिकासे पहले श्वास-क्रिया होती है, इसका एक निर्दिष्ट नियम है। यथा—

आदौ चन्द्रः सिते पक्षे भास्करस्तु सितेतरे।
प्रतिपत्तो दिनान्याहुस्त्रीणि त्रीणि क्रमोदये॥

(पवनविजयस्वरोदय)

शुक्लपक्षकी प्रतिपदा तिथिसे तीन-तीन दिनकी बारीसे चन्द्र अर्थात् बायीं नासिकासे तथा कृष्णपक्षकी प्रतिपदा तिथिसे तीन-तीन दिनकी बारीसे सूर्यनाडी अर्थात् दायीं नासिकासे पहले श्वास प्रवाहित होता है अर्थात् शुक्लपक्षकी प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, त्रयोदशी, चतुर्दशी और पूर्णिमा—इन नौ तिथियोंमें प्रात:काल सूर्योदयके समय पहले बायीं नासिकासे तथा चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी, दशमी, एकादशी और द्वादशी—इन छ: तिथियोंमें प्रात:काल पहले दायीं नासिकासे श्वास चलना आरम्भ होता है और वह ढाई घड़ीतक रहता है। उसके बाद दूसरी नासिकासे श्वास चलना प्रारम्भ होता है। कृष्णपक्षकी प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, त्रयोदशी, चतुर्दशी तथा अमावास्या—इन नौ तिथियोंमें सूर्योदयके समय पहले दायीं नासिकासे तथा चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी, दशमी, एकादशी और द्वादशी—इन छ: तिथियोंमें सूर्योदयकालमें पहले बायीं नासिकासे श्वास चलना आरम्भ होता है और ढाई घड़ीके बाद दाहिनी नासिकासे चलने लगता है। इस प्रकार नियमपूर्वक ढाई-ढाई घड़ीतक एक-एक नासिकासे श्वास चलता है। यही मनुष्य-जीवनमें श्वासकी गतिका स्वाभाविक नियम है।

वहेत् तावद् घटीमध्ये पञ्चतत्त्वानि निर्दिशेत्।

(स्वरोदयशास्त्र)

प्रतिदिन रात-दिनकी साठ घड़ियोंमें ढाई-ढाई घड़ीके हिसाबसे एक-एक नासिकासे निर्दिष्ट क्रमसे श्वास चलनेके समय क्रमश: पञ्चतत्त्वोंका उदय होता है। इस श्वास-प्रश्वासकी गतिको समझकर कार्य करनेपर शरीर स्वस्थ रहता है और मनुष्य दीर्घजीवी होता है, फलस्वरूप सांसारिक, वैषयिक—सभी कार्योंमें सफलता मिलनेके कारण सुखपूर्वक संसार-यात्रा पूरी होती है।

बायीं नासिकाका श्वासफल

जिस समय इडा नाडीसे अर्थात् बायीं नासिकासे श्वास चलता हो, उस समय स्थिर कर्मोंको करना चाहिये। जैसे—अलंकार-धारण, दूरकी यात्रा, आश्रममें प्रवेश, राजमन्दिर तथा महल बनाना एवं द्रव्यादिका ग्रहण करना। तालाब, कुआँ आदि जलाशय तथा देवस्तम्भ आदिकी प्रतिष्ठा करना। इसी समय यात्रा, दान, विवाह, नवीन वस्त्रधारण, शान्तिकर्म, पौष्टिक कर्म, दिव्यौषधसेवन, रसायनकार्य, प्रभुदर्शन, मित्रता-स्थापन आदि शुभ कार्य करने चाहिये। बायीं नासिकासे श्वास चलनेके समय शुभ कार्योंमें सिद्धि मिलती है। परंतु वायु, अग्नि और आकाशतत्त्वके उदयके समय उक्त कार्य नहीं करने चाहिये।

दायीं नासिकाका श्वासफल

जिस समय पिंगला नाडी अर्थात् दाहिनी नासिकासे श्वास चलता हो उस समय कठिन कर्म करने चाहिये। जैसे—कठिन क्रूर-विद्याका अध्ययन और अध्यापन, स्त्रीसंसर्ग, नौकादि आरोहण, तान्त्रिकमतानुसार वीरमन्त्रादिसम्मत उपासना, शत्रु-दण्ड, शस्त्राभ्यास, गमन, पशुविक्रय, ईंट, पत्थर, काठ तथा रत्न आदिका घिसना और छीलना, संगीत-अभ्यास, यन्त्र-तन्त्र बनाना, किले और पहाड़पर चढ़ना, हाथी, घोड़ा तथा रथ आदिकी सवारी सीखना, व्यायाम, षट्कर्मसाधन, यक्षिणी, बेताल तथा भूतादिसाधन, औषधसेवन, लिपिलेखन, दान, क्रय-विक्रय, युद्ध, भोग, राजदर्शन तथा स्नानाहार आदि।

सुषुम्णा नाडीका श्वासफल

दोनों नासापुटोंसे श्वास चलनेके समय किसी प्रकारका शुभ या अशुभ कार्य नहीं करना चाहिये। उस समय कोई भी काम करनेसे वह निष्फल होगा तथा योगाभ्यास और ध्यान-धारणादिके द्वारा मात्र भगवत्स्मरण करना उचित है। सुषुम्णा नाडीसे श्वास चलनेके समय किसीको भी शाप या वर-प्रदान सफल होता है।

श्वास-प्रश्वासकी गति जानकर, तत्त्वज्ञान और तिथि-नक्षत्रके अनुसार, ठीक-ठीक नियमपूर्वक सब कर्मोंको

करनेपर आशाभङ्गजनित मनस्ताप नहीं भोगना पड़ता।

रोगोत्पत्तिका पूर्ण ज्ञान और उसका प्रतिकार

प्रतिपदा आदि तिथियोंको यदि निश्चित नियमके विरुद्ध श्वास चले तो निःसंदेह कुछ अमङ्गल होगा। जैसे, शुक्लपक्षकी प्रतिपदाको प्रातः नींद टूटनेपर सूर्योदयके समय पहले यदि दायीं नासिकासे श्वासका चलना आरम्भ हो तो उसी दिनसे पूर्णिमातकके बीच गर्मीके कारण और कृष्णपक्षकी प्रतिपदा तिथिको सूर्योदयके समय पहले बायीं नासिकासे श्वासका चलना आरम्भ हो तो उसी दिनसे अमावास्यातकके भीतर कफ या सर्दीके कारण कोई पीड़ा होगी, इसमें संदेह नहीं।

दो पखवाड़ोंतक इसी प्रकार विपरीत ढंगसे सूर्योदयकालमें निःश्वास चलता रहे तो किसी आत्मीय स्वजनको भारी बीमारी होगी अथवा मृत्यु होगी या और किसी प्रकारकी विपत्ति आयेगी। तीन पखवाड़ोंसे ऊपर लगातार गड़बड़ होनेपर निश्चित रूपसे अपनी मृत्यु हो जायगी।

शुक्ल अथवा कृष्णपक्षकी प्रतिपदाके दिन प्रातःकाल यदि विपरीत ढंगसे निःश्वास-गतिका पता लग जाय तो उस नासिकाको कई दिनोंतक बंद रखनेसे रोगोत्पत्तिकी सम्भावना नहीं रहती। उस नासिकाको इस तरह बंद रखना चाहिये जिसमें उससे निःश्वास न चले। इस प्रकार कुछ दिनोंतक दिन-रात निरन्तर (स्नान और भोजनका समय छोड़कर) नाक बंद रखनेसे उक्त तिथियोंके भीतर बिलकुल ही कोई रोग नहीं होगा।

यदि असावधानीवश निःश्वासमें गड़बड़ी होनेसे कोई रोग उत्पन्न हो जाय तो जबतक रोग दूर न हो जाय, तबतक ऐसा करना चाहिये कि जिससे शुक्लपक्षमें दायीं और कृष्णपक्षमें बायीं नासिकासे श्वास न चले। ऐसा करनेसे रोग शीघ्र दूर हो जायगा। यदि कोई भारी रोग होनेकी सम्भावना होगी तो वह बहुत सामान्य रूपमें होगा और फिर थोड़े ही दिनोंमें दूर हो जायगा। ऐसा करनेसे न तो रोगजनित कष्ट भोगना पड़ेगा और न चिकित्सकको धन ही देना पड़ेगा।

नासिका बंद करनेका नियम

नाकके छिद्रमें घुस सके, इतनी-सी पुरानी साफ रूई लेकर उसकी गोल पोटली-सी बना ले और उसे साफ बारीक कपड़ेसे लपेटकर सिल ले। फिर इस पोटलीको नाकके छिद्रमें घुसाकर छिद्रको इस प्रकार बंद कर दे, जिसमें उस नाकसे श्वास-प्रश्वास-कार्य बिलकुल ही न हो। जिन लोगोंको कोई सिर-सम्बन्धी रोग है अथवा जिनका मस्तक दुर्बल हो, उन्हें रूईसे नाक बंद न कर मात्र स्वच्छ पतले वस्त्रकी पोटली बनाकर उसीसे नाक बंद करनी चाहिये।

किसी भी कारण, जितने क्षण या जितने दिन नासिका बंद रखनेकी आवश्यकता हो उतने क्षणों या उतने दिनोंतक अधिक परिश्रमका कार्य, धूम्रपान, जोरसे चिल्लाना, दौड़ना आदि नहीं करना चाहिये। जब जिस किसी कारणसे नाक बंद रखनेकी आवश्यकता हो, तभी इन नियमोंका पालन अवश्य करना चाहिये। नयी अथवा बिना साफ की हुई मैली रूई कभी नाकमें नहीं डालनी चाहिये।

निःश्वास बदलनेका तरीका

कार्यभेदसे तथा अन्यान्य अनेक कारणोंसे एक नासिकासे दूसरी नासिकामें वायुकी गति बदलनेकी भी आवश्यकता हुआ करती है। कार्यके अनुकूल नासिकासे श्वास चलना आरम्भ होनेतक, उसे न करके चुपचाप बैठे रहना किसीके लिये भी सम्भव नहीं। अतएव अपनी इच्छाके अनुसार श्वासकी गति बदलनेकी क्रिया सीख लेना नितान्त आवश्यक है। यह क्रिया अत्यन्त सहज है, सामान्य चेष्टासे ही श्वास-गति बदली जा सकती है।

जिस नासिकासे श्वास चलता हो, उसके विपरीत दूसरी नासिकाको अँगूठेसे दबा देना चाहिये और जिससे श्वास चलता हो उसके द्वारा वायु खींचना चाहिये। फिर उसे दबाकर दूसरी नासिकासे वायुको निकालना चाहिये। कुछ देरतक इसी तरह एकसे श्वास लेकर दूसरीसे निकालते रहनेसे अवश्य श्वासकी गति बदल जायगी। जिस नासिकासे श्वास चलता हो उसी करवट सोकर यह क्रिया करनेसे अति शीघ्र श्वासकी गति बदल जाती है और दूसरी नासिकासे श्वास प्रवाहित होने लगता है। इस क्रियाके बिना भी जिस नाकसे श्वास चलता है, केवल उस करवट कुछ समयतक सोये रहनेसे भी श्वासकी गति

बदल जाती है।

इस लेखमें जहाँ-जहाँ नि:श्वास बदलनेकी बात लिखी जायगी, वहाँ-वहाँ पाठकोंको इसी कौशलसे श्वासकी गति बदलनेकी बात समझनी चाहिये। जो अपनी इच्छाके अनुसार वायुको रोक और निकाल सकता है, वही वायुपर विजय प्राप्त कर सकता है।

बिना औषधके रोगनिवारण

अनियमित क्रियाके कारण जिस तरह मानव-देहमें रोग उत्पन्न होते हैं, उसी तरह औषधके बिना ही भीतरी क्रियाओंके द्वारा नीरोग होनेके उपाय भगवान्‌के बनाये हुए हैं। हम लोग उस भगवत्प्रदत्त सहज कौशलको नहीं जानते, इसी कारण दीर्घ कालतक रोगजनित दु:ख भोगते हैं। यहाँ रोगोंके निदानके लिये स्वरोदयशास्त्रोक्त कुछ यौगिक उपायोंका उल्लेख किया जा रहा है, जिनके प्रयोगसे विशेष लाभ हो सकता है—

ज्वर—ज्वरका आक्रमण होनेपर अथवा आक्रमणकी आशङ्का होनेपर जिस नासिकासे श्वास चलता हो, उस नासिकाको बंद कर देना चाहिये। जबतक ज्वर न उतरे और शरीर स्वस्थ न हो जाय, तबतक उस नासिकाको बंद ही रखना चाहिये। ऐसा करनेसे दस-पंद्रह दिनोंमें उतरनेवाला ज्वर पाँच-सात दिनोंमें अवश्य ही उतर जायगा। ज्वरकालमें मन-ही-मन सदा चाँदीके समान श्वेत वर्णका ध्यान करनेसे अति शीघ्र लाभ होता है।

सिन्दुवारकी जड़ रोगीके हाथमें बाँध देनेसे सब प्रकारके ज्वर निश्चय ही दूर हो जाते हैं।

अँतरिया-ज्वर—श्वेत अपराजिता अथवा पलाशके कुछ पत्तोंको हाथसे मलकर, कपड़ेसे लपेटकर एक पोटली बना लेनी चाहिये और जिस दिन ज्वरकी बारी हो उस दिन सबेरेसे ही उसे सूँघते रहना चाहिये। अँतरिया-ज्वर बंद हो जायगा।

सिरदर्द—सिरदर्द होनेपर दोनों हाथोंकी केहुनीके ऊपर धोतीके किनारे अथवा रस्सीसे खूब कसकर बाँध देना चाहिये। इससे पाँच-सात मिनटमें ही सिरदर्द जाता रहेगा। ऐसा बाँधना चाहिये कि रोगीको हाथमें अत्यन्त दर्द मालूम हो। सिरदर्द अच्छा होते ही बाँहें खोल देनी चाहिये।

सिरदर्द दूसरे प्रकारका एक और होता है, जिसे साधारणत: 'अधकपाली' या 'आधासीसी' कहते हैं। कपालके मध्यसे बायीं या दायीं ओर आधे कपाल और मस्तकमें अत्यन्त पीडा मालूम होती है। प्राय: यह पीडा सूर्योदयके समय आरम्भ होती है और दिन चढ़नेके साथ-साथ यह भी बढ़ती जाती है। दोपहरके बाद घटनी प्रारम्भ होती है और सायंतक प्राय: नहीं ही रहती। इस रोगका आक्रमण होनेपर जिस तरफके कपालमें दर्द हो, ऊपर लिखे अनुसार उसी तरफकी केहुनीके ऊपर जोरसे रस्सी बाँध देनी चाहिये। थोड़ी ही देरमें दर्द शान्त हो जायगा और रोग जाता रहेगा। दूसरे दिन यदि पुन: दर्द शुरू हो और प्रतिदिन एक ही नासिकासे श्वास चलते समय हो तो सिरदर्द मालूम होते ही उस नाकको बंद कर देना चाहिये और हाथको भी बाँध रखना चाहिये। 'अधकपाली' सिरदर्दमें इस क्रियासे होनेवाले आश्चर्यजनक फलको देखकर आप चकित रह जायँगे।

सिरमें पीडा—जिस व्यक्तिके सिरमें पीडा हो उसे प्रात:काल शय्यासे उठते ही नासापुटसे शीतल जल पीना चाहिये। इससे मस्तिष्क शीतल रहेगा, सिर भारी नहीं होगा और सर्दी नहीं लगेगी। यह क्रिया विशेष कठिन भी नहीं है। एक पात्रमें ठंडा जल भरकर उसमें नाक डुबाकर धीरे-धीरे गलेके भीतर जल खींचना चाहिये। यह क्रिया क्रमश: अभ्याससे सहज हो जायगी। सिरमें पीडा होनेपर चिकित्सक रोगीके आरोग्य होनेकी आशा छोड़ देता है, रोगीको भी भीषण कष्ट होता है; परंतु इस उपायसे निश्चय ही आशातीत लाभ पहुँचेगा।

उदरामय, अजीर्ण आदि—भोजन तथा जलपान आदि जो कुछ भी करना हो वह सब दायीं नासिकासे श्वास चलते समय करना चाहिये। प्रतिदिन इस नियमद्वारा आहार करनेसे वह बहुत आसानीसे पच जायगा और कभी अजीर्ण-रोग नहीं होगा। जो लोग इस रोगसे दु:खी हैं, वे भी यदि इस नियमके अनुसार प्रतिदिन भोजन करें तो खायी हुई चीज पच जायगी और धीरे-धीरे उनका रोग दूर हो जायगा। भोजनके बाद थोड़ी देर बायीं करवट सोना चाहिये।

जिन्हें समय न हो उन्हें ऐसा उपाय करना चाहिये कि जिससे भोजनके बाद दस-पंद्रह मिनटतक दायीं नासिकासे श्वास चले अर्थात् पूर्वोक्त नियमके अनुसार रूईद्वारा बायीं नासिका बंद कर लेनी चाहिये। गुरुपाक (भारी) भोजन करनेपर भी इस नियमसे वह शीघ्र पच जाता है।

स्थिरताके साथ बैठकर नाभिमण्डलमें अपलक (एकटक) दृष्टि जमाकर नाभिकन्दका ध्यान करनेसे एक सप्ताहमें उदरामय (उदर-सम्बन्धी) रोग दूर हो जाता है।

श्वास रोककर नाभिको खींचकर नाभिकी ग्रन्थिको एक सौ बार मेरुदण्डसे मिलानेपर आमादि उदरामयजनित सब तरहकी पीडाएँ दूर हो जाती हैं और जठराग्नि तथा पाचनशक्ति बढ़ जाती है।

प्लीहा—रातको बिछौनेपर सोकर और प्रातः शय्या-त्यागके समय हाथ और पैरोंको सिकोड़कर छोड़ देना चाहिये। फिर कभी बायीं और कभी दायीं करवट टेढ़ा-मेढ़ा शरीर करके समस्त शरीरको सिकोड़ना और फैलाना चाहिये। प्रतिदिन चार-पाँच मिनट ऐसा करनेसे प्लीहा-यकृत् (तिल्ली, लीवर)-रोग दूर हो जायगा। सर्वदा इसका अभ्यास करनेसे प्लीहा-यकृत्-रोगकी पीडा कभी नहीं भोगनी पड़ेगी अर्थात् निर्मूल हो जायगी।

दन्तरोग—प्रतिदिन जितनी बार मल-मूत्रका त्याग करे, उतनी बार दाँतोंकी दोनों पंक्तियोंको मिलाकर जोरसे दबाये रखे। जबतक मल या मूत्र निकलता रहे, तबतक दाँतोंसे दाँत मिलाकर दबाये रहना चाहिये। दो-चार दिन ऐसा करनेसे कमजोर दाँतोंकी जड़ मजबूत हो जायगी। नियमित अभ्यास करनेसे दन्तमूल दृढ़ हो जाता है और दाँत दीर्घ कालतक काम देते हैं तथा दाँतोंमें किसी प्रकारकी बीमारी होनेका कोई भय नहीं रहता।

स्नायविक वेदना—छाती, पीठ या बगलमें—चाहे जिस स्थानमें स्नायविक या अन्य किसी प्रकारकी वेदना हो तो वेदना प्रतीत होते ही जिस नासिकासे श्वास चलता हो उसे बंद कर देनेसे दो-चार मिनटके पश्चात् अवश्य ही वेदना शान्त हो जायगी।

दमा या श्वासरोग—जब दमेका जोरका दौरा हो तब जिस नासिकासे निःश्वास चलता हो, उसे बंद करके दूसरी नासिकासे श्वास चलाना चाहिये। दस-पंद्रह मिनटमें दमेका जोर कम हो जायगा। प्रतिदिन ऐसा करनेसे महीनेभरमें पीडा शान्त हो जायगी। दिनमें जितने ही अधिक समयतक यह क्रिया की जायगी, उतना ही शीघ्र यह रोग दूर होगा। दमाके समान कष्टदायक कोई रोग नहीं, दमाका जोर होनेपर इस क्रियासे बिना किसी दवाके बीमारी चली जाती है।

वात—प्रतिदिन भोजनके बाद कंघीसे सिर झाड़ना चाहिये। कंघी इस प्रकार चलानी चाहिये जिसमें उसके काँटे सिरको स्पर्श करें। उसके बाद वीरासन लगाकर अर्थात् दोनों पैर पीछेकी ओर मोड़कर उनके ऊपर पंद्रह मिनट बैठना चाहिये। प्रतिदिन दोनों समय भोजनके बाद इस प्रकार बैठनेसे कितना भी पुराना वात क्यों न हो निश्चय ही अच्छा हो जायगा। यदि स्वस्थ आदमी इस नियमका पालन करे तो उसे वातरोग होनेकी कोई आशङ्का नहीं रहेगी।

नेत्ररोग—प्रतिदिन सबेरे बिछौनेसे उठते ही सबसे पहले मुँहमें जितना पानी भरा जा सके उतना भरकर दूसरे जलसे आँखोंको बीस बार झपटा मारकर धोना चाहिये।

प्रतिदिन दोनों समय भोजनके बाद हाथ-मुँह धोते समय कम-से-कम सात बार आँखोंमें जलका झपटा देना चाहिये।

जितनी बार मुँहमें जल डाले, उतनी बार आँख और मुँहको धोना न भूले।

प्रतिदिन स्नान-कालमें तेल मालिश करते समय पहले दोनों पैरोंके अँगूठोंके नखोंको तेलसे भर देना चाहिये और फिर तेल लगाना चाहिये।

ये नियम नेत्रोंके लिये विशेष लाभदायक हैं। इनसे दृष्टिशक्ति तेज होती है, आँखें स्निग्ध रहती हैं और आँखोंमें कोई बीमारी होनेकी सम्भावना नहीं रहती। नेत्र मनुष्यके परमधन हैं। अतएव प्रतिदिन नियमपालनमें कभी आलस्य नहीं करना चाहिये। (क्रमशः)

पिरामिड-चिकित्सा

(डॉ० श्रीसत्यनारायणजी बाहेती)

मिस्रके पिरामिड दुनियाके सात आश्चर्योंमें परिगणित हैं। दुनियाके वैज्ञानिक उसका रहस्य जाननेको उत्सुक हैं। उसकी गहन खोजमें इस प्रकार लगे हुए हैं कि हजारों साल पहलेकी लाशें (ममी) पिरामिडके नीचे रखी हुई हैं। फिर भी खराब क्यों नहीं हो रही हैं, इसका क्या कारण है? अभीतककी की हुई खोजोंसे पता चला है कि इसके नीचे तथा इसके ऊपर विद्युत्-लहरें बराबर चलती रहती हैं, जिनसे ऊर्जाका बहाव निरन्तर होता रहता है, इसी कारण लाशोंमें दुर्गन्ध (बदबू) नहीं आ रही है। कुछ और गहन खोज करनेके पश्चात् वैज्ञानिकोंने यह भी पाया है कि इस ऊर्जाद्वारा हम अपने दैनिक जीवनमें भी लाभ उठा सकते हैं। पिरामिडद्वारा विभिन्न उपयोग हो सकता है और हम दैनिक जीवनमें इसे अपनाकर अधिक लाभ उठा सकते हैं।

पिरामिडके कुछ उपयोग इस प्रकार हैं—

१-पिरामिडका व्यवहार सिरके ऊपर करनेसे मानव-मस्तिष्कपर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है और हमारे विचार अच्छे हो जाते हैं।

२-बच्चोंको घरपर अध्ययन-कालमें पिरामिड पहनाकर तथा कुर्सीके नीचे रखकर उनकी बुद्धिका विकास करवा सकते हैं, उन्हें याद जल्दी हो जायगा एवं होशियार हो जायँगे।

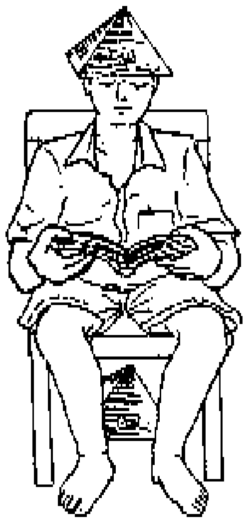

अध्ययन करते वक्त पिरामिडका उपयोग

३-पिरामिडको जलकी हंडीके ऊपर रख देनेसे बारह घंटेके भीतर ही जल अधिक स्वादयुक्त, मीठा तथा आरोग्यप्रद हो जाता है।

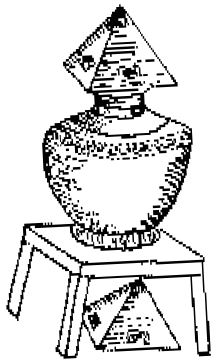

जलको आरोग्यप्रद बनानेके लिये पिरामिडका उपयोग

४-खाने-पीनेके सामान एवं अङ्कुरित खाद्य-पदार्थ पिरामिडके नीचे रखनेसे गुणयुक्त एवं स्वादयुक्त हो जाते हैं तथा लम्बे समयतक ताजे बने रहते हैं। दूध, दही, मिठाई तथा अनाज कुछ भी रख सकते हैं।

५-शरीरके जिस भागमें रोग या दर्द हो, उस भागपर पिरामिड रखनेसे रोग एवं दर्द दूर हो जाता है। पेटकी गड़बड़ीमें पिरामिड पेटपर रखनेसे पेट ठीक हो जाता है तथा पिरामिडका चार्ज किया हुआ गरम जल पीनेसे भी अच्छा लाभ होता है।

दर्दको दूर करनेके लिये पिरामिडका उपयोग

६-तरकारी तथा साग-भाजी पिरामिडके नीचे रखनेपर ताजी बनी रहती है, जल्दी खराब नहीं होती।

७-प्रतिदिन चेहरे एवं आँखोंको पिरामिडयुक्त जलद्वारा धोनेसे त्वचा चमकने लगती है, चेहरेकी कान्ति एवं आँखोंकी रोशनी बढ़ जाती है।

८-पिरामिडको हैटकी तरह प्रतिदिन प्रात:-सायं आधे घंटेतक पहन रखनेसे सिर-दर्द, आधा-शीशी, बालोंका झड़ना, साइनस, टेंशन, डिप्रेशन, अनिद्रा, सफेद बाल आदि बीमारियाँ दूर होती हैं।

९-ध्यान तथा पूजा-प्रार्थना करते समय पिरामिड पहन लेनेसे एकाग्रता मिलती है।

१०-क़ब्ज़के रोगी यदि प्रात: चार गिलास जल पीकर पेटपर पिरामिड रखें तो मल-विसर्जनमें कठिनाई नहीं होगी।

११-ऑफिसमें कुर्सीके नीचे पिरामिड रखनेसे ऊर्जा (Energy) मिलती है तथा शरीरमें फुरती आती है।

१२-टूथपेस्ट, तेल, बाम एवं दवाइयाँ पिरामिडके नीचे तीन-चार दिन रखनेसे उनकी शक्ति बढ़ जाती है।

१३-बगीचोंमें पिरामिडयुक्त जलका सिंचन करनेसे फूलोंके रंग आकर्षक हो जाते हैं और वे रोगमुक्त रहते हैं।

१४-रातको सोते समय पलंगके नीचे पिरामिड रखनेसे बहुत अच्छी नींद आती है तथा नींदकी गोलियोंसे छुटकारा मिल जाता है।

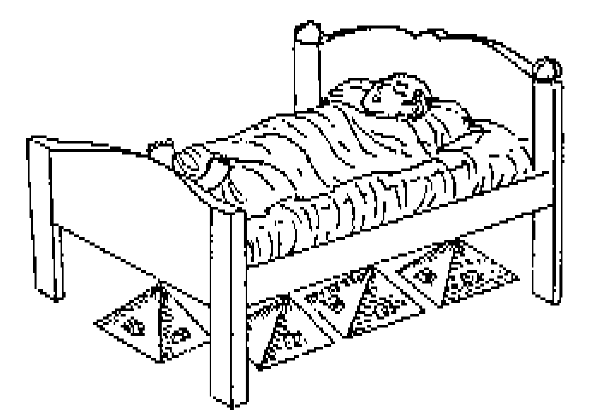

शरीरको स्वस्थ रखने एवं निद्राके लिये पिरामिडका उपयोग

१५-पिरामिड-जलसे तैयार की गयी तुलसीकी पत्ती खानेसे सर्दी, ज्वर, दर्द तथा अनेक रोगोंमें लाभ होता है।

१६-वास्तुशास्त्रमें भी पिरामिडका विशेष महत्त्व बताया गया है।

१७-अनेक पिरामिडोंसे बने यन्त्रको नित्यप्रति व्यवहारमें लानेसे शरीरके हर प्रकारके रोग दूर हो जाते हैं।

धूम्रपान-चिकित्सा

[औषधियोंका धुआँ नासिका तथा मुखद्वारा लेना]

(श्रीनाथूरामजी गुप्त)

औषधियोंके धूम्रको पान करनेकी एक चिकित्सा-पद्धति भी आयुर्वेदिक ग्रन्थोंमें वर्णित है। यज्ञोंद्वारा अग्निकुण्डसे निकले पवित्र होतव्य द्रव्यसे उद्दीप्त वायुद्वारा सम्पूर्ण वायुमण्डलकी पवित्रता सर्वविश्रुत ही है। इस धूमसे न केवल देवता आप्यायित होते हैं, अपितु सम्पूर्ण प्राणिजगत् लाभान्वित होता है। प्राचीन कालमें नित्य हवनकी परम्परा थी। जिससे पूरा परिसर सुगन्धित रहता था। आयुर्वेदके आचार्योंने रोगोंके उपशमनके लिये विशेष प्रकारकी औषधियोंद्वारा धूम्रवर्तिकाका निर्माण करके पुन: उसे प्रज्वलित कर विधिपूर्वक धूम्रके सेवनका विधान किया है, जिससे अनेक रोग शान्त हो जाते हैं। यह धूम्रपान आजके तथाकथित पतनकारी और अनारोग्यकारक धूम्रपानसे सर्वथा भिन्न है।

इसमें यह सिद्धान्त है कि जब मादक द्रव्योंकी गन्ध अग्निके संसर्गसे तीव्र होकर शरीरको अधिक हानि पहुँचाती है तथा नये विकार उत्पन्न करती है तो रोगनाशक या पौष्टिक द्रव्य निश्चय ही अग्निके माध्यमसे विखण्डित हो, धूम्रपानद्वारा शरीरको पुष्टि तथा आरोग्य प्रदान करेंगे।

धूम्रपानके लाभके विषयमें आचार्य चरक बताते हैं—धूम्रपान करनेसे सिरका भारीपन, शिर:शूल, पीनस, अर्धाव-भेदक (Hemicrania), शूल, कास, हिचकी, दमा, गलग्रह,

दाँतोंकी दुर्बलता, कान, नाक, नेत्रोंसे दोषजन्य-स्रावका होना, पूतिघ्राण (नाकसे दुर्गन्धका निकलना Ogoena), आस्यगन्ध (Foul smell of mouth), दाँतका शूल, खालित्य, केशोंका पीला होना, केशोंका गिरना (इन्द्रलुप्त), छींक आना, अधिक तन्द्रा होना, बुद्धि (ज्ञानेन्द्रियों)-का व्यामोह होना तथा अधिक निद्रा आना आदि अनेक रोग शान्त होते हैं। बाल, कपाल, इन्द्रियोंका तथा स्वरका बल अधिक बढ़ता है, जो व्यक्ति मुखसे धूम्र-सेवन करता है, उसे जत्रु (ठोढ़ी)-के ऊपरी भागमें होनेवाले रोग विशेषकर शिरोभागमें वात-कफजन्य बलवती व्याधियाँ नहीं होती हैं।[१]

यदि सिर, नाक और नेत्रगत दोष हो और धूम्र पीने योग्य पुरुष हो तो उसे नासिकासे धूम्रपान करना चाहिये और यदि कण्ठगत दोष हो तो मुखसे धूम्र पीना चाहिये। नासिकासे धूम्र पीनेके बाद धूम्रको मुखसे ही निकालना चाहिये। धूम-कवल (घूँट) मुखसे लेनेपर नासिकासे कभी न निकाले; क्योंकि विरुद्ध मार्गमें गया हुआ धूम नेत्रोंको नष्ट कर देता है।[२]

औषधिके धूम्रपानकी विधिका वर्णन करते हुए लिखा गया है कि रोगके अनुसार निर्धारित औषधियोंको कूट-छानकर एक सरकंडेके ऊपर लपेटकर जौके आकारकी (बीचमें मोटी आदि-अन्तमें पतली) अँगूठेके समान मोटी तथा आठ अंगुल लम्बी वर्ति (बत्ती) बनानी चाहिये। छायामें रखनेपर जब बत्ती सूख जाय तो सीकको निकालकर घृत, तेल आदि स्नेहसे उसे आर्द्रकर धूमनेत्र (Cigarette Holder)-में रखकर अग्निसे जलाकर इस सुखकारी प्रायोगिक धूम्रका धीरे-धीरे तीन या नौ बार सुखपूर्वक सेवन करना चाहिये। धूम्रपानहेतु योग (मिश्रणहेतु औषधियों)-का वर्णन करते हुए महर्षि चरक लिखते हैं—

हरेणुकां प्रियङ्गुं च पृथ्वीकां केशरं नखम्॥
ह्रीवेरं चन्दनं पत्रं त्वगेलोशीरपद्मकम्।
ध्यामकं मधुकं मांसीं गुग्गुल्वगुरुशर्करम्॥
न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थप्लक्षलोध्रत्वचः शुभाः।
वन्यं सर्जरसं मुस्तं शैलेयं कमलोत्पले॥
श्रीवेष्टकं शल्लकीं च शुकबर्हमथापि च।

(चरक सूत्र० ५। २०—२३)

अर्थात् हरेणुका, प्रियंगुफूल, पृथ्वीका (काला जीरा), केशर, नख, ह्रीवेर, सफेद चन्दन, तेजपत्र, दालचीनी, छोटी इलायची, खश, पद्मांक, ध्यामक, मुलहठी, जटामासी, गुग्गुल, अगर, शर्करा, बरगदकी छाल, गूलरकी छाल, पीपलकी छाल, पाकड़की छाल, लोधकी छाल, वन्य, सर्जरस (राल), नागरमोथा, शैलेय, श्वेत कमलपुष्प, नीलकमल, श्रीवेष्टक, शल्लकी तथा शुकबर्ह—इन औषधियोंकी वर्तिका बनानी चाहिये।

शिरोविरेचनार्थ (सिरके भारी होनेपर छींक लेने-हेतु) निम्न धूम्रपान-योग बताया गया है—

श्वेता ज्योतिष्मती चैव हरितालं मनःशिला॥
गन्धाश्चागुरुपत्राद्या धूमं मूर्धविरेचने।

(चरक सू० ५। २६-२७)

अर्थात् अपराजिता, मालकाँगनी, हरताल, मैनसिल, अगर तथा तेजपत्र—इन औषधियोंकी वर्तिका बनाकर धूम्रपान करनेसे शिरोविरेचन होता है। यह चिकित्सा-पद्धति अब लुप्तप्राय हो गयी है, पर प्राचीन समयमें यह मुख्य आरोग्यविधि थी।

१-चरक सू० ५। २७—३३।

२-धूमयोग्य: पिबेद्दोषे शिरोघ्राणाक्षिसंश्रये॥
घ्राणेनास्येन कण्ठस्थे मुखेन घ्राणपो वमेत्। आस्येन धूमकवलान् पिबन् घ्राणेन नोद्वमेत्॥
प्रतिलोमं गतो ह्याशु धूमो हिंस्याद्धि चक्षुषी।
(चरक सूत्र० ५। ४६—४८)

ज्योतिष—रोग एवं उपचार

(श्रीनलिनजी पाण्डे 'तारकेश')

ज्योतिष-विज्ञान और चिकित्सा-शास्त्रका सम्बन्ध प्राचीन कालसे रहा है। पूर्वकालमें एक सुयोग्य चिकित्सकके लिये ज्योतिष-विषयका ज्ञाता होना अनिवार्य था। इससे रोग-निदानमें सरलता होती थी। यद्यपि कुछ दशक पूर्वतक विदेशी प्रभावके कारण हमारे ज्योतिष-ज्ञानपर कड़ी और भ्रामक आलोचनाओंका कोहरा छाया था तथा इसे बड़ी हेय दृष्टिसे देखा जाता था, तथापि सौभाग्यसे इधर कुछ समयसे लोगोंका विश्वास तथा आकर्षण इस विषयपर पुन: बढ़ता नजर आ रहा है।

ज्योतिष-शास्त्रके द्वारा रोगकी प्रकृति, रोगका प्रभाव-क्षेत्र, रोगका निदान और साथ ही रोगके प्रकट होनेकी अवधि तथा कारणोंका भलीभाँति विश्लेषण किया जा सकता है। यद्यपि आजकल चिकित्सा-विज्ञानने पर्याप्त उन्नति कर ली है तथा कई आधुनिक और उन्नत प्रकारके चिकित्सीय उपकरणोंद्वारा रोगकी पहचान सूक्ष्मतासे हो भी जाती है, तथापि कई बार देखनेमें आता है कि जहाँ इन उन्नत उपकरणोंद्वारा रोगकी पहचानका सटीक निष्कर्ष नहीं निकल पाता है, वहीं रोगीका स्वास्थ्य, धन, समय आदिका व्यर्थ-व्यय क्लेशकारक भी हो जाता है। अत: ऐसेमें जो बात रह जाती है वह है दैवव्यपाश्रय-चिकित्सा। किसी विद्वान् दैवज्ञके विश्लेषण एवं उचित परामर्शद्वारा न केवल स्थिति स्पष्ट होती है, अपितु कई बार अत्यन्त सहजतासे (ग्रहदान तथा जप आदिसे) रोग दूर हो जाता है। इस दृष्टिसे एक कुशल ज्योतिषी चिकित्साविद् तथा रोगी दोनोंके लिये मार्गदर्शक बन सकता है।

ज्योतिष-शास्त्रमें द्वादश राशियों, नवग्रहों, सत्ताईस नक्षत्रों आदिके द्वारा रोगके सम्बन्धमें जानकारी प्राप्त की जा सकती है। कालपुरुषके विभिन्न अङ्गोंको नियन्त्रित और निर्देशित करनेवाली राशियों, ग्रहों आदिकी स्थितियोंके आधारपर हम किसी निष्कर्षपर पहुँचते हैं। जन्म-चक्रमें स्थित प्रत्येक राशि, ग्रह आदि शरीरके किसी-न-किसी अङ्गका प्रतिनिधित्व करते हैं। जिस ग्रह आदिका दूषित प्रभाव होता है, उससे सम्बन्धित अङ्गपर रोगका प्रभाव रह सकता है। इस सम्बन्धमें चन्द्रमाके अंशादिके आधारपर निकाली गयी विंशोत्तरीदशा (या अन्य प्रकारकी दशा)-का अध्ययन महत्त्वपूर्ण रहता है।

ज्योतिष-विज्ञानमें किसी भी विषयके परिज्ञानके लिये जन्म-चक्रके तीन बिन्दुओं—लग्न, सूर्य तथा चन्द्रका अलग-अलग और परस्पर एक-दूसरेसे अन्त:सम्बन्धोंका विश्लेषण मुख्य होता है। यह अध्ययन 'ज्योतिष और रोग'-के संदर्भमें और भी उपयोगी है। लग्न जहाँ बाह्य शरीरका, बाह्य व्यक्तित्वका दर्पण होता है, वहीं सूर्य आत्मिक शरीर, इच्छा-शक्ति, तेज एवं ओजका प्रतीक होता है। चन्द्रमाका सम्बन्ध हमारे मानसिक व्यक्तित्व, भावनाओं तथा संवेदनाओंसे होता है। सामान्य रूपसे यह समझा जा सकता है कि लग्न मस्तिष्कका, चन्द्र मन, उदर और इन्द्रियोंका तथा सूर्य आत्मस्वरूप एवं हृदयका प्रतिनिधित्व करता है।

सामान्य रूपमें हम राशियों और ग्रहोंके अन्त:सम्बन्धको इस तरह समझ सकते हैं कि राशियाँ जैसे अलग-अलग आकृतियोंवाले पात्र हों और ग्रह अलग-अलग प्रकृतिके पदार्थ तो जैसी प्रकृतिके पदार्थको जैसी आकृतिके पात्रमें डाला जायगा, वह तदनुरूप आचरण करेगा और वैसा ही फल भी देगा।

राशियोंसे सम्बन्धित रोग एवं अङ्ग

विविध राशियों, भावोंके द्वारा हमारे किन-किन अङ्गोंका बोध होता है और किस प्रकारके रोग इनके द्वारा सम्भावित हैं, सर्वप्रथम इसपर संक्षिप्त चर्चा अग्रसारणी 'क' में वर्णित है—

सारणी 'क' राशियोंसे सम्बन्धित रोग एवं अङ्ग

भाव	राशि	तत्त्व	अङ्ग	सम्भावित रोग
प्रथम	मेष	अग्नि	पिट्यूटरी ग्लैण्ड, पाइनीअल ग्लैण्ड, सिर, दिमाग, ऊपरी जबड़ा।	मस्तिष्क-रोग, विकार, सिरदर्द, मलेरिया, रक्ताघात, नेत्ररोग, पाइरिया, मुँहासे, चेचक, मसूढ़ेका दर्द, कोढ़, उन्माद, चक्कर-मिरगी आदि।
द्वितीय	वृष	पृथ्वी	थायराइड, गला, जीभ, नाक, आवाज, चेहरा, ग्रासनली तथा निचला जबड़ा।	गलगण्ड, मोटापा, कण्ठप्रदाह, डिप्थीरिया, फोड़ा-फुंसी, मद्य-सेवन, नेत्र-दोष, मुखपक्षाघात, दाँत-दर्द, मसूढ़ेकी सूजन।
तृतीय	मिथुन	वायु	स्कन्ध, फेफड़ा, ऊपरी पसली, कन्धे, कान, हाथ-बाजू, स्वरयन्त्र, श्वास-नली, कोशिकाएँ।	दमा, श्वास-नली-शोथ, मानसिक असंतुलन, मस्तिष्कज्वर, रोगभ्रमी, कंधेकी जकड़न, बाजूकी नसका दर्द, नकसीर, साइनोसाइटिस, एलर्जी, ब्रोंकाइटिस।
चतुर्थ	कर्क	जल	थाइमस ग्लैण्ड, नीचेकी पसली, फेफड़ा, स्तन, उदर।	अजीर्ण, अपच, उदर और पाचन-सम्बन्धी रोग, क्षय, कफ, गैस-विकार, जलोदर, कैंसर, वातरोग।
पञ्चम	सिंह	अग्नि	एड्रेनिल, तिल्ली, पित्ताशय, हृदय, यकृत्, पीठ, कोख, कमर, रक्त।	हृदयरोग, पीलिया, बुखार, मूर्च्छा, तीव्र-कम धड़कन, नेत्ररोग, कटिवेदना, आमवातिकज्वर, चेचक, अग्निमान्द्य, चलनविभ्रम।
षष्ठ	कन्या	पृथ्वी	नाभिचक्र, अग्न्याशय, कमर, मेखलाक्षेत्र, आँत।	आँतरोग, कोष्ठबद्धता, ऐंठन, बृहदान्त्र, शोथ, दस्त, हैजा, मूत्रकृच्छ्ररोग, आमाशयव्रण, मलद्वार-कष्ट, अर्थराईटिस।
सप्तम	तुला	वायु	गुर्दे, मूत्राशय, वस्ति, अण्डाशय, डिम्ब-ग्रन्थि, मूत्रवाहिनी, गर्भाशय नलिकाएँ।	गुर्दे-मूत्राशयरोग, कमर-दर्द, स्पाण्डलाइटिस, मधुमेह, रीढ़की हड्डीका दर्द, वृक्कशोथ, पथरी।
अष्टम	वृश्चिक	जल	मलद्वार, मलाशय, भ्रूण, लिङ्ग, योनि, अण्डकोष, गर्भाशय, प्रोस्टेट।	बवासीर, नासूर (नाड़ी-व्रण), पथरी, रतिरोग, रक्त-दूषित, विषपदार्थ, विचित्र कठिन रोग, कैंसर, हर्निया।
नवम	धनु	अग्नि	नितम्ब, जंघा।	साइटिका, रक्त-विकार, ट्यूमर, गठिया, दुर्घटना, चोट, घाव, पक्षाघात।
दशम	मकर	पृथ्वी	घुटने, जोड़, बाह्य त्वचा, बाल, नाखून, कंकाल।	घुटने, जोड़ोंका दर्द, गठिया, एक्जिमा, चमड़ीके रोग, मिरगी, ल्यूकोडर्मा, दाँत-दर्द, हाथीपाँव।
एकादश	कुम्भ	वायु	पाँव, कान, साँस, गुल्फ, एड़ी।	स्नायु-स्थानकी बीमारी, हृदयरोग, रक्त-विकार, पागलपन।
द्वादश	मीन	जल	तलवा, पाँव, दाँत।	गोखरू, लसिकातन्त्रके रोग, फोड़ा, व्रण, टी०बी०, ट्यूमर, कफदोष, पैरका लकवा, पैर, एड़ीका दर्द।

द्वादश राशियोंमें, भावोंमें कुछ अग्नि-तत्त्वका, कुछ वायु आदि तत्त्वका प्रतिनिधित्व करते हैं। इन तत्त्वोंकी प्रकृतिके आधारपर भी रोगकी पहचान सरलतासे हो सकती है। यथा—

१, ५, ९ राशि/भाव—अग्नितत्त्व प्रधान होनेसे ओज, बल तथा क्रियात्मकताका प्रतिनिधित्व करता है। सामान्यत: शारीरिक स्वास्थ्य अच्छा रहता है। अस्वस्थता थोड़े समयकी, किंतु तीव्र हो सकती है। इनमें माइग्रेन, अनिद्रा, मूर्च्छा, तीव्र सिरदर्द, मुँहासे आदि कठिनाइयाँ रह सकती हैं। इससे भूख-प्यास, निद्रा, आलस्य आदिकी अभिव्यक्ति होती है।

२, ६, १० राशि/भाव—पृथ्वीतत्त्व प्रधान होनेसे हड्डियों, मांस, त्वचा, नाखून, नाडी-रोग, केश आदिको बताता है। इनसे संधिवात, गठिया, वायु-विकार, कठिन-जटिल रोग, वजन एवं सम्बन्धित रोग, कीड़े, सर्पद्वारा काटना, वाहन-दुर्घटनाकी अभिव्यक्ति होती है।

३, ७, ११ राशि/भाव—वायुतत्त्व प्रधान होनेसे प्राण-वायुको बताता है। मानसिक विकार, निराशा, तनाव, पक्षाघात, अतिनशा (धुँआ), बुद्धि-विभ्रम, ग्रन्थियोंका कार्य,अधिक श्रमसे होनेवाले रोग होते हैं। फैलना, सिकुड़ना, चलना-फिरना, शरीरके कार्य व्यक्त होते हैं।

४, ८, १२ राशि/भाव—जलतत्त्व प्रधान होनेसे रक्त तथा जलीय पदार्थका नियन्त्रण होता है। ट्यूमर, कैंसर, कफ, इन्डरोग, हिस्टीरिया, अतिनशा (तरल), घबराहट, फोबिया-जैसे रोग सम्भावित होते हैं। ये भाव शरीरमें स्थित वीर्य, रक्त, त्वचा, मज्जा, मूत्र, लारको व्यक्त करते हैं।

नवग्रह, रोग तथा तत्सम्बन्धित अङ्ग

नवग्रहोंमें सूर्य-चन्द्र आदि तो जिस राशिमें बैठते हैं, उसके अनुरूप रोग-विचार होता है तथा राशिसे उनकी शत्रुता, मित्रताको भी देखा जाता है तथापि उनका स्वतन्त्र रूपमें जिस अङ्ग या रोग-विशेष बतलानेकी सम्भावना रहती है, वह निम्न सारणी 'ख' द्वारा समझी जा सकती है—

सारणी 'ख' नवग्रह, रोग तथा तत्सम्बन्धित अङ्ग

ग्रह	अङ्ग	रोग
सूर्य	सिर, हृदय, आँख (दायीं), मुख, तिल्ली, गला, मस्तिष्क, पित्ताशय, हड्डी, रक्त, फेफड़े, स्तन।	मस्तिष्क-रोग, हृदय-रोग, उच्च रक्तचाप, उदर-विकार, मेननजाइटिस, मिरगी, सिरदर्द, नेत्रविकार, बुखार।
चन्द्र	छाती, लार, गर्भ, जल, रक्त, लसिका, ग्रन्थियाँ, कफ, मूत्र, मन, आँख (बायीं), उदर, डिम्बग्रन्थि, जननाङ्ग (महिला)।	नेत्ररोग, हिस्टीरिया, ठंड, कफ, उदर-रोग, अस्थमा, डायरिया, दस्त, मानसिक रोग, जननाङ्ग रोग (स्त्रियोचित), पागलपन, हैजा, ट्यूमर, ड्रॉप्सी।
मंगल	पित्त, मात्रक, मांसपेशी, स्वादेन्द्रिय, पेशीतन्त्र, तन्तु, बाह्य-जननाङ्ग, प्रोस्टेट, गुदा, रक्त, अस्थि-मज्जा, नाक, नस, ऊतक।	तीव्र ज्वर, सिरदर्द, मुँहासे, चेचक, घाव, जलन, कटना, बवासीर, नासूर, साइनस, गर्भपात, रक्ताल्पता, फोड़ा, लकवा, पक्षाघात, पोलियो, गले-गर्दनके रोग, हाइड्रोसील, हर्निया।
बुध	स्नायु-तन्त्र, जीभ, आँत, वाणी, नाक, कान, गला, फेफड़े।	मस्तिष्क-विकार, स्मृतिह्रास, पक्षाघात, हकलाहट, दौरे आना, सूँघने, सुनने अथवा बोलनेकी शक्तिका ह्रास।
बृहस्पति	यकृत्, नितम्ब, जाँघ, मांस, चर्बी, कफ, पाँव।	पीलिया, यकृत्-सम्बन्धी रोग, अपच, मोतियाबिन्द, रक्त-कैंसर, फुफ्फुसावरण, शोथ, वात, बादी, उदर-वायु, तिल्ली-कष्ट, साइटिका, गठिया, कटिवेदना, नाभि-चलना।
शुक्र	जननाङ्ग, आँख, मुख, ठुड्डी, गाल, गुर्दे, ग्लैण्ड, वीर्य।	काले-नीले धब्बे, चमड़ीके रोग, कोढ़, सफेद दाग, गुप्ताङ्ग-रोग, मधुमेह, नेत्ररोग, मोतियाबिन्द, रक्ताल्पता, एक्जिमा, मूत्ररोग। **(क्रमश:)**

ग्रह	अङ्ग	रोग
शनि	पाँव, घुटने, श्वास, हड्डी, बाल, नाखून, दाँत, कान।	बहरापन, दाँत-दर्द, पायरिया, ब्लडप्रेशर, कठिन उदरशूल, आर्थराईटिस, कैंसर, स्पांडलाइटिस, हाथ-पाँवकी कँपकपाहट, साइटिका, मूर्च्छा, जटिल रोग।
राहु, केतु	राहु मुख्यत: शरीरके ऊपरी हिस्से और केतु शरीरके निचले धड़को बतलाता है।	प्राय: ये दोनों ग्रह क्रमश: शनि और मंगलके अनुरूप रोग-व्याधि देते हैं या जिस राशि-भावमें बैठते हैं, उसके अनुरूप रोग-व्याधि देते हैं। राहु, केतुसे सम्बन्धित रोगकी पहचान प्राय: कठिनाईसे हो पाती है।

द्वादश राशियों, भाव और नवग्रहोंके आधारपर शरीरके अङ्गों और व्याधियोंकी जानकारीके पश्चात् हम गतिशील दशाओंके स्वामीकी सबलता या दुर्बलताको अपने अध्ययनका आधार बनाते हैं। नैसर्गिक शुभग्रह—बृहस्पति, शुक्र, बुध तथा चन्द्रमा—क्रमागत रूपमें पापग्रह—शनि, मंगल, राहु, सूर्य, केतुसे पीडित होनेपर अपनी दशावधिमें रोग देते हैं।

द्वादश लग्न तथा शुभ-अशुभ ग्रह

प्रत्येक लग्नके लिये शुभ-अशुभ ग्रह भिन्न-भिन्न होते हैं। अत: उनके आधारपर भी यह निर्णय लिया जाता है कि कौन-सा ग्रह शुभकारी है और कौन अशुभकारी। निम्न सारणी 'ग' से यह स्पष्ट किया गया है—

सारणी 'ग'—द्वादशलग्न तथा शुभ-अशुभ ग्रह

लग्न	शुभ ग्रह	अशुभ ग्रह	मध्यम ग्रह
मेष	सूर्य, चन्द्र, मंगल, बृहस्पति	बुध, शुक्र	शनि
वृष	बुध, शुक्र	चन्द्र, मंगल, बृहस्पति	सूर्य, शनि
मिथुन	बुध, शुक्र	मंगल, बृहस्पति	शनि
कर्क	चन्द्र, मंगल, बृहस्पति	बुध, शनि	सूर्य, शुक्र
सिंह	सूर्य, मंगल, बृहस्पति	बुध, शनि	चन्द्र, शुक्र
कन्या	चन्द्र, बुध, शुक्र	सूर्य, मंगल, बृहस्पति, शनि	
तुला	बुध, शुक्र, शनि	सूर्य, मंगल, बृहस्पति	चन्द्र
वृश्चिक	सूर्य, चन्द्र, मंगल, बृहस्पति	बुध, शुक्र, शनि	चन्द्र
धनु	सूर्य, मंगल, बृहस्पति	बुध, शुक्र, शनि	चन्द्र
मकर	बुध, शुक्र, शनि	मंगल, बृहस्पति	सूर्य, चन्द्र
कुम्भ	शुक्र, शनि	चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति	सूर्य
मीन	चन्द्र, बृहस्पति	सूर्य, बुध, शुक्र, शनि	मंगल

गोचर, दशाफल तथा जप-दान

गोचर (दैनिक ग्रह-स्थिति)-में ग्रहोंकी स्थिति भी रोगकी अवधि और तीव्रता आदिको स्पष्ट करती है। प्राय: द्वितीय, षष्ठ और अष्टम भावमें स्थित ग्रह तथा इनके स्वामीकी दशावधिमें शारीरिक रोगकी सघनता होती है। इसके अतिरिक्त तीसरे, सातवें, बारहवें भावके स्वामी भी रोगोत्पत्तिको व्यक्त करते हैं। दशाओंके स्वामीके आधारपर ही मुख्यत: रोग-निवारणार्थ दान-जप करके स्थितियोंमें सुधार लाया जा सकता है। निम्न सारणी 'घ' में नवग्रहोंके अशुभ फलके शमनार्थ किये जानेवाले उपायोंकी जानकारीसे लाभ उठाया जा सकता है—

सारणी—'घ'—अरिष्ट-निवारणके लिये ग्रहोंका जप-दान-पूजन

ग्रह १	दान-सामग्री २	रत्न ३	व्रत-सम्बन्धित दिन ४	जड़ी-बूटी धारण ५	जप ६	जप-संख्या ७	जप-काल ८	हवन-समिधा ९	अन्य पूजन १०
सूर्य	गेहूँ, गुड़, लाल वस्त्र, घी, लाल वर्णकी गाय, माणिक, ताम्र-वस्तु, स्वर्ण, लाल फल तथा अन्य वस्तुएँ, दक्षिणा।	माणिक	रविवार	बेलपत्रकी जड़ लाल डोरेमें।	ॐ ह्रां ह्रीं ह्रौं सः सूर्याय नमः	७०००	सूर्योदय	आक	हरिवंशपुराण, सूर्यपूजन, सूर्य-अर्घ्य, गायत्री-जप, आदित्य-हृदयस्तोत्र-पाठ।
चन्द्र	चावल, श्वेत चन्दन, शङ्ख, कपूर, दही, दूध, घी, श्वेत वस्त्र, चाँदी, कांस्य-पात्र, सफेद अन्य वस्तुएँ, दक्षिणा।	मोती	सोमवार	खिरनीकी जड़ सफेद डोरेमें।	ॐ श्रां श्रीं श्रौं सः चन्द्रमसे नमः	११०००	संध्या	पलाश	शिवपूजन, सतीचन्द्रपूजन, पूर्णिमा-व्रत।
मंगल	गेहूँ, मसूर-दाल, घी, गुड़, स्वर्ण, लाल वस्त्र, लाल चन्दन, लाल फल तथा अन्य वस्तुएँ, ताम्र-वस्तु, दक्षिणा।	मूँगा	मंगलवार	अनन्तमूलकी जड़ लाल डोरेमें।	ॐ क्रां क्रीं क्रौं सः भौमाय नमः	१००००	सूर्योदय	खैर	हनुमत्पूजन, ब्रह्मचर्य-पालन, मांस-मदिरासे दूर।
बुध	मूँग, चीनी, हरा वस्त्र, हरी सब्जी, कांस्य-पात्र, अन्य हरी वस्तुएँ, दक्षिणा।	पन्ना	बुधवार	विधारकी जड़ हरे डोरेमें।	ॐ ब्रां ब्रीं ब्रौं सः बुधाय नमः	९०००	सूर्योदय	अपामार्ग	दुर्गा-गणेश-पूजन, बुध-पूजन।
बृहस्पति	पीले चावल, चना-दाल, हल्दी, शहद, पीला वस्त्र, पीले फल, धर्मग्रन्थ, कांस्य-पात्र, स्वर्ण, दक्षिणा।	पुष्पराग	बृहस्पति	केलेकी जड़ पीले डोरेमें।	ॐ ग्रां ग्रीं ग्रौं सः गुरवे नमः	१९०००	संध्या	पीपल	विष्णु-गुरुपूजन, गौ, द्विज-वृद्धसेवा।
शुक्र	चाँदी, चावल, मिस्री, श्वेत चन्दन, चमकीला वस्त्र, सुगन्धित पदार्थ, दक्षिणा।	हीरा	शुक्रवार	सरपोंखाकी जड़ चमकीले डोरेमें।	ॐ द्रां द्रीं द्रौं सः शुक्राय नमः	१६०००	सूर्योदय	गूलर	लक्ष्मीदेवी-पूजन, शुक्र-पूजन।
शनि	उरद, काले तिल, काले चने, तेल, काला वस्त्र, लौहपात्र, काले जूते, चाकू, दक्षिणा।	नीलम	शनिवार	बिच्छूकी जड़ काले डोरेमें।	ॐ प्रां प्रीं प्रौं सः शनैश्चराय नमः	२३०००	संध्याकाल	शमी	भैरव-पूजन, शनि-पूजन।
राहु	सात अनाज, उरद, नारियल, चाकू, कम्बल, बिल्व-पत्र, कस्तूरी, तिल, खिचड़ी, अष्टधातु-मुद्रिका, दक्षिणा।	गोमेद	जिस राशिमें हो उसके स्वामीके अनुरूप ही रंगकी वस्तुओंका दान	सफेद चन्दन (स्वामी)-के अनुरूप डोरेमें।	ॐ भ्रां भ्रीं भ्रौं सः राहवे नमः	१८०००	रात्रि	दूर्वा	शिव, सर्प, राहु-पूजन।
केतु	सात अनाज, तिल, नारियल, ऊनी वस्त्र, कोई हथियार (कैंची), खिचड़ी, अष्टधातु-मुद्रिका, दक्षिणा।	लहसुनिया	राहुके समान	असगन्धकी जड़ स्वामीके अनुरूप डोरेमें।	ॐ स्रां स्रीं स्रौं सः केतवे नमः	१००००	रात्रि	कुशा	गणेश और केतु-पूजन।

नवग्रह दान-पूजन आदिसे रोगोपचारमें श्रद्धाकी महती भूमिका होती है। पूर्ण निष्ठा, उत्साह तथा संकल्पबद्धतासे किये गये कार्यकी सफलता वैसे भी सुनिश्चित होती है। रोग-पीडित व्यक्ति यदि दान-जप आदि कृत्य स्वयं करे तो यह सर्वश्रेष्ठ स्थिति है अन्यथा अन्य पारिवारिक जन या योग्य ब्राह्मणद्वारा प्रतिनिधिरूपमें यह सम्पादित किया जा सकता है। अत्यन्त मारकग्रहकी दशा हो तो 'महामृत्युञ्जय-जप' करना चाहिये। सर्वव्याधि-विनाशके लिये 'लघुमृत्युञ्जय-जप' '**ॐ जूं सः**' (नाम, जिसके लिये है) '**पालय पालय सः जूं ॐ**' इस मन्त्रका ११ लाख जप तथा एक लाख दस हजार दशांशका जप करनेसे सब प्रकारके रोगोंका नाश होता है। इतना न हो तो कम-से-कम सवा लाख जप और

श्रीमहामृत्युञ्जय-कवच-यन्त्र

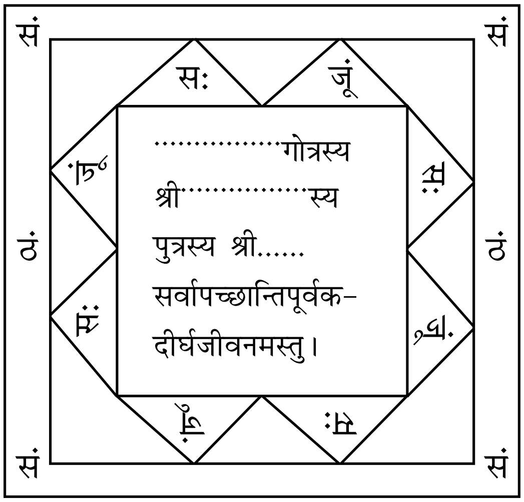

साढ़े बारह हजार दशांश-जप करना चाहिये। इसके साथ ही निम्न यन्त्र भी भोजपत्रपर अष्टगन्धसे लिखकर सिद्ध मुहूर्तमें गुग्गुलका धूप देकर धारण करना चाहिये। पुरुषके दाहिने तथा स्त्रीके बायें हाथमें बाँधना चाहिये। गोत्र, पिताका नाम, पुत्र या पुत्री (रोगी)-का नाम यथास्थान लिख देना चाहिये। यन्त्र इस प्रकार है—

नवग्रह-यन्त्र

८ ॐ ह्रीं राहवे नमः	१ ॐ ह्रीं सूर्याय नमः	६ ॐ ह्रीं शुक्राय नमः
३ ॐ ह्रीं भौमाय नमः	५ ॐ ह्रीं गुरवे नमः	७ ॐ ह्रीं शनैश्चराय नमः
४ ॐ ह्रीं बुधाय नमः	९ ॐ ह्रीं केतवे नमः	२ ॐ ह्रीं सोमाय नमः

इसके अतिरिक्त यदि एक साथ अधिक ग्रहोंका दूषित प्रभाव रोगकी उत्पत्ति और वृद्धिका कारण हो तो नवग्रह-यन्त्रको भोजपत्रपर अष्टगन्धकी स्याहीसे किसी शुभ सिद्ध मुहूर्तमें अपने पास रखने, धारण करने तथा पूजन करनेसे भी अरिष्टका नाश होता है। यन्त्रको चाँदी, सप्त-अष्टधातुमें भी बनाया जा सकता है।

यदि उपर्युक्त प्रयोगोंके साथ या असमर्थतावश मात्र कातरभावसे ही प्रभुका स्मरण किया जाय तो रोगमुक्तिकी सहज-प्राप्ति असम्भव नहीं है। भगवत्कृपासे सभी कुछ सम्भव है।

वेदोंमें सूर्यकिरण-चिकित्सा

(पद्मश्री डॉ० श्रीकपिलदेवजी द्विवेदी, निदेशक, विश्वभारती अनुसंधान परिषद्)

वेदोंमें प्राकृतिक चिकित्सासे सम्बद्ध सामग्री पर्याप्त मात्रामें मिलती है। इसमें विशेष उल्लेखनीय है— १-सूर्यकिरण-चिकित्सा, २-वायु-चिकित्सा या प्राणायाम-चिकित्सा, ३-अग्नि-चिकित्सा, ४-जल-चिकित्सा, ५-मृत्-चिकित्सा, ६-यज्ञ-चिकित्सा, ७-मानस-चिकित्सा या मनोवैज्ञानिक चिकित्सा, ८-मन्त्र-चिकित्सा, ९-हस्तस्पर्श-चिकित्सा, १०-उपचार-चिकित्सा। यहाँ केवल सूर्यकिरण-चिकित्साका विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

वेदोंमें सूर्यको इस स्थावर और जंगम जगत्की आत्मा कहा गया है—**सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।** (ऋक्० १।११५।१, यजु० ७।४२, अथर्व० १३।२।३५, तैत्ति० सं० १।४।४३।१)। यह मन्त्र ऋक्, यजु और अथर्व तीनों वेदोंमें आया है। प्रश्नोपनिषद्में भी सूर्यको '**प्राणः प्रजानाम्**' अर्थात् मनुष्यमात्रका प्राण कहा गया है। मत्स्यपुराणका कहना है कि '**आरोग्यं भास्करादिच्छेत्**' अर्थात् यदि नीरोगताकी इच्छा है तो सूर्यकी शरणमें जाओ। अतएव

प्राचीन ऋषि-मुनि और आचार्योंने सूर्योपासना तथा सूर्यनमस्कार आदिकी विधि प्रचलित की।

वेदोंमें उदित होते हुए सूर्यकी किरणोंका बहुत महत्त्व वर्णित किया गया है। अथर्ववेदके एक मन्त्रमें कहा गया है कि उदित होता हुआ सूर्य मृत्युके सभी कारणों अर्थात् सभी रोगोंको नष्ट करता है।[१] उदित होते हुए सूर्यसे अवरक्त (हलकी लाल—Infrared) किरणें निकलती हैं। इन लाल किरणोंमें जीवनी शक्ति होती है और रोगोंको नष्ट करनेकी विशेष क्षमता होती है। अतएव ऋग्वेदमें कहा गया है कि उदित होता हुआ सूर्य हृदयके सभी रोगोंको, पीलिया और रक्ताल्पता (Anaemia)- को दूर करता है।[२] अथर्ववेदमें भी इस बातकी पुष्टि करते हुए कहा गया है कि सूर्यकी अवरक्त किरणें हृदयकी बीमारियोंको तथा खूनकी कमीको दूर करती हैं।[३]

प्रातः सूर्योदयके समय पूर्वाभिमुख होकर संध्योपासना और हवन करनेका यही रहस्य है कि ऐसा करनेसे सूर्यकी अवरक्त किरणें सीधे छातीपर पड़ती हैं और उनके प्रभावसे व्यक्ति सदा नीरोग रहता है।

सूर्यकिरण-चिकित्सा-हेतु रोगी उदित होते हुए सूर्यके सम्मुख खड़े होकर या बैठकर सूर्यकी किरणोंको शरीरपर सीधे पड़ने दे। ऋतुके अनुसार शरीरको खुला रखे या हलका कपड़ा पहने, जिससे किरणोंका प्रभाव पूरे शरीरपर पड़ सके। कम-से-कम पंद्रह मिनट सूर्यके सम्मुख रहे। रोग और आवश्यकताके अनुसार यह समय आधा घंटातक बढ़ा सकते हैं। इसके बाद सूर्यकी किरणें तीव्र हो जाती हैं, अतः विशेष लाभ नहीं होगा। सूर्योदयके समयकी किरणोंका जो लाभ होता है, वह अन्य समय सम्भव नहीं है।

इस विषयमें अथर्ववेदके नौवें काण्डका आठवाँ सूक्त विशेष महत्त्वका है। इसमें बाईस मन्त्रोंमें सूर्यकिरण-चिकित्सासे ठीक होनेवाले रोगोंकी एक लम्बी सूची दी गयी है और कहा गया है कि उदित होता हुआ सूर्य इन रोगोंको नष्ट करता है।[४] इस सूचीमें निर्दिष्ट प्रमुख रोग हैं—सिरदर्द, कानदर्द, रक्तकी कमी, सभी प्रकारके सिरके रोग, बहरापन, अंधापन, शरीरमें किसी प्रकारका दर्द या अकड़न, सभी प्रकारके ज्वर, पीलिया (पाण्डुरोग), जलोदर, पेटके विविध रोग, विषका प्रभाव, वातरोग, कफज रोग, मूत्ररोग, आँखकी पीडा, फेफड़ोंके रोग, हड्डी-पसलीके रोग, आँतों और योनिके रोग, यक्ष्मा (T. B.), घाव, रीढ़की हड्डी, घुटना और कूल्हेके रोग आदि। एक अन्य सूक्तमें **'सूर्यः कृणोतु भेषजम्'** सूर्य इन रोगोंको ठीक करे, कहकर अपचित् (गण्डमाला), गलने और सड़नेवाली बीमारियाँ तथा कुष्ठ आदि रोगोंका उल्लेख किया गया है।[५]

अथर्ववेदका कथन है कि सूर्यके प्रकाशमें रहना अमृतके लोकमें रहनेके तुल्य है।[६] मृत्युके बन्धनोंको यदि तोड़ना है तो सूर्यके प्रकाशसे अपना सम्पर्क बनाये रखें।[७] सूर्य शरीरको नीरोगता प्रदान करते हैं—**सूर्यस्ते तन्वे शं तपाति।** (अथर्व० ८।१।५)

ऋग्वेदका कथन है कि सूर्य मनुष्यको नीरोगता, दीर्घायुष्य और समग्र सुख प्रदान करते हैं—**सविता नः सुवतु सर्वतातिं सविता नो रासतां दीर्घमायुः॥** (ऋक्० १०।३६।१४) एक अन्य मन्त्रमें कहा गया है कि सूर्यकी किरणें मनुष्यको मृत्युसे बचाती हैं—**सूर्यस्त्वाधिपति-**

१-उद्यन्त्सूर्यो नुदतां मृत्युपाशान्। (अथर्व० १७।१।३०)

२-उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवम्। हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय॥ (ऋक्० १।५०।११)

३-अनु सूर्यमुदयतां हृद्द्योतो हरिमा च ते। गो रोहितस्य वर्णेन तेन त्वा परि दध्मसि॥ (अथर्व० १।२२।१)

४-(क) शीर्षक्तिं शीर्षामयं कर्णशूलं विलोहितम्। सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे॥ (अथर्व० ९।८।१)

(ख) सं ते शीर्ष्णः कपालानि हृदयस्य च यो विधुः। उद्यन्नादित्य रश्मिभिः शीर्ष्णो रोगमनीनशः अङ्गभेदम् अशीशमः। (अथर्व० ९।८।२२)

५-(अ) अपचितः प्र पतत सुपर्णो वसतेरिव। (अथर्व० ६।८३।१)

(आ) असूतिका रामायण्य पचित् प्र पतिष्यति। ग्लौरितः प्र पतिष्यति स गलुन्तो नशिष्यति। (अथर्व० ६।८३।३)

६-सूर्यस्य भागे अमृतस्य लोके। (अथर्व० ८।१।१)

७-मृत्योः पड्वीशं अवमुञ्चमानः। मा च्छित्था··· सूर्यस्य संदृशः॥ (अथर्व० ८।१।४)

मृत्योरुदायच्छतु रश्मिभिः॥ (अथर्व० ५।३०।१५) सूर्यकी सात किरणोंसे सात प्रकारकी ऊर्जा प्राप्त होती है—**अधुक्षत् पिप्युषीमिषम् ऊर्जं सप्तपदीमरिः। सूर्यस्य सप्त रश्मिभिः॥** (ऋक्० ८।७२।१६)

सूर्यकिरणोंद्वारा चिकित्सा—इसके अनेक नाम प्रचलित हैं, जैसे सूर्य-चिकित्सा, सूर्यकिरण-चिकित्सा, रंग-चिकित्सा (Colour-therapy, chromo-therapy, chromopathy) आदि। इस चिकित्सामें सूर्यकी किरणोंको शरीरपर सीधे लेकर रोग-निवारण या सूर्यकी किरणोंसे प्रभावित जल, चीनी, तेल, घी, ग्लिसरीन आदिका प्रयोग करके रोगोंका निवारण किया जाता है।

सूर्यकिरण-चिकित्साका प्रसार—पाश्चात्त्य जगत्में इस चिकित्सा-पद्धतिका आविष्कार और प्रचार जनरल पंलिझन होनने किया था। तत्पश्चात् डॉक्टर पेन स्कॉट, डॉक्टर राबर्ट बोहलेंड तथा डॉक्टर एडविन, बेबिट आदिने इस चिकित्सा-पद्धतिको आगे बढ़ाया। धीरे-धीरे यह विद्या फ्रांस और इंग्लैण्ड आदि देशोंमें फैली। अब इस विषयपर प्रचुर साहित्य उपलब्ध है।

भारतवर्षमें विशेषरूपसे हिन्दीमें इस चिकित्सा-पद्धतिके प्रचार और उन्नयनका श्रेय श्रीगोविन्द बापूजी टोंगू और डॉक्टर द्वारकानाथ नारंग आदिको है। सम्प्रति हिन्दीमें इस विषयपर अनेक ग्रन्थ प्राप्य हैं।

सूर्यकी सात रंगकी किरणें—सूर्यकी किरणें सात रंगकी हैं। ऋग्वेद[१] और अथर्ववेदमें[२] सूर्यकी सात रंगकी किरणोंका उल्लेख सप्तरश्मि, सप्ताश्व (सप्त अश्व) आदि शब्दोंसे किया गया है।

इन सात रंगकी किरणोंका वैज्ञानिक दृष्टिसे बहुत महत्त्व है। प्रत्येक किरणका अलग-अलग प्रभाव है। इनकी गति और प्रकृति भी भिन्न-भिन्न है। इन सात रंगोंको मिला देनेसे सफेद रंग हो जाता है। इन सात रंगकी किरणोंसे ही संसारके प्रत्येक पदार्थको रूप-रंग प्राप्त होता है। इन सात किरणोंके तीन भेद किये गये हैं—उच्च, मध्य और निम्न अर्थात् गहरा, मध्यम और हल्का। इस प्रकार ७×३=२१ प्रकारकी किरणें हो जाती हैं। इनसे ही संसारके सारे रूप-रंग हैं। अथर्ववेदके प्रथम मन्त्रमें इसका वर्णन करते हुए कहा गया है कि ये २१ प्रकारकी किरणें संसारमें सर्वत्र फैली हुई हैं और ये ही सारे रूप-रंगोंको धारण करती हैं—**ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः।** (अथर्व० १।१।१)

सात किरणोंके नाम और प्रभाव—इन सात किरणोंको अंग्रेजी और हिन्दीमें ये नाम दिये गये हैं—इनकी तरंग-दैर्घ्य (Wave-length) और आवृत्ति (Frequency) अलग-अलग है। अतः इनका प्रभाव भी पृथक्-पृथक् है। अपनी गति और प्रकृतिके अनुसार ये विभिन्न रोगोंको दूर करते हैं। इसकी संक्षिप्त रूपरेखा नीचे दी जा रही है। इन किरणोंको संक्षेपमें अंग्रेजी और हिन्दीमें ये नाम दिये गये हैं—(१) V I B G Y O R. (२) बै नी आ ह पी ना ला।

नाम	संकेत	नाम	संकेत	प्रभाव
Violet	V	बैगनी	बै	शीतल, लाल कणोंका वर्धक, क्षयरोगका नाशक
Indigo	I	नीला	नी	शीतल, पित्तज रोगोंका नाशक, पौष्टिक
Blue	B	आसमानी	आ	शीतल, पित्तज रोगोंका नाशक, ज्वरनाशक
Green	G	हरा	ह	समशीतोष्ण, वातज रोगोंका नाशक, रक्तशोधक
Yellow	Y	पीला	पी	उष्ण, कफज रोगोंका नाशक, हृदय एवं उदररोगका नाशक
Orange	O	नारंगी	ना	उष्ण, कफज रोगोंका नाशक, मानसिक शक्तिवर्धक
Red	R	लाल	ला	अति उष्ण, कफज रोगोंका नाशक, उत्तेजक, केवल मालिश हेतु

१-(क) सप्तरश्मिरधमत् तमांसि। (ऋक्० ४।५०।४)
(ख) आ सूर्यो यातु सप्ताश्वः। (ऋक्० ५।४५।९)
२-(ग) यः सप्तरश्मिर्वृषभः०। (अथर्व० २०।३४।१३)

गति और प्रकृतिके आधारपर नीचेसे ऊपरवाली किरणें क्रमशः अधिक प्रभावशाली हैं। जैसे—लालसे अधिक नारंगी, उससे अधिक पीली और सबसे अधिक प्रभाववाली बैगनी है। अतः बैगनीसे अधिक शक्तिवाली किरणोंको परा-बैगनी (Ultra-violet) किरणें और लालसे कम शक्तिशाली किरणोंको अवरक्त (Infra-red) किरणें कहते हैं।

वस्तुतः मूल रंग तीन हैं—लाल, पीला और नीला। इनके मिश्रणसे ही अन्य रंग बनते हैं। जैसे-लाल और नीलेसे बैगनी, नीले और सफेदसे आसमानी, नीले और पीलेसे हरा, लाल और पीलेसे नारंगी।

सूर्यकी सात रंगकी किरणोंके तीन परिवार किये गये हैं—(१) पीला, नारंगी, लाल (२) हरा तथा (३) बैगनी, नीला, और आसमानी।

ओषधि-निर्माण-विधि—साधारणतया ओषधि-निर्माणके लिये उसी रंगकी काँचकी साफ बोतल ली जाती है। विभिन्न रंगकी बोतल न मिलनेपर उस रंगका पतला कागज सादी शीशीपर पूरा चिपका दिया जाता है, अतः वह उस रंगका काम दे देती है। सात शीशी लेनेकी जगह प्रत्येक परिवारसे एक-एक रंग लेनेपर तीन बोतलोंसे काम चल जाता है। ये तीन रंग हैं—(१) नारंगी, (२) हरा तथा (३) नीला। इनमेंसे नारंगी कफ-जन्य रोगोंके लिये तथा हरा वातज रोगोंके लिये और नीला पित्तज रोगोंके लिये है। इस प्रकार वात, पित्त और कफ—इन त्रिदोषज रोगोंकी चिकित्सा हो जाती है।

बोतलोंको अच्छी तरह साफ करनेके बाद उनमें शुद्ध जल भरा जाता है। बोतलोंको कम-से-कम तीन अंगुल खाली रखे। तत्पश्चात् उन्हें ढक्कन लगाकर बंद कर दे। शुद्ध जलसे भरी इन बोतलोंको धूपमें छ:से आठ घंटे रखनेपर दवा तैयार हो जाती है। धूपमें बोतलोंको इस प्रकार रखे कि एक बोतलकी छाया दूसरे रंगकी बोतलपर न पड़े। रात्रिमें बोतलोंको अंदर रख ले। इस प्रकार बनी हुई दवाको दिनमें तीन या चार बार पिलावे। एक बार बनी दवाको चार या पाँच दिन सेवन कर सकते हैं। पुनः दुबारा बोतलोंमें दवा बना ले।

साधारणतया नारंगी रंगकी दवा भोजनके बाद पंद्रहसे तीस मिनटके अंदर लेनी चाहिये। हरे और नीले रंगकी दवाएँ खाली पेट या भोजनसे एक घंटा पहले ले। हरे रंगकी दवा प्रातः खाली पेट छ:-से आठ औंस ले सकते हैं। यह दवा विजातीय द्रव्योंको बाहर निकालकर शरीरको शुद्ध करती है। इसका विपरीत प्रभाव नहीं होता।

दवाकी मात्रा—आयुके अनुसार चायवाली चम्मचसे एक-से चार चम्मच एक बारमें ले। साधारणतया दवा दिनमें तीन या चार बार ले। तीव्र ज्वर आदिमें आवश्यकतानुसार एक-एक घंटेपर भी दवा ली जा सकती है।

विभिन्न रंगोंकी बोतलोंके पानीका उपयोग

(१) लाल (Red) **रंग—**लाल रंगकी बोतलका पानी अत्यन्त गर्म होता है, अतः इसे पीना वर्जित है। इसको पीनेसे खूनी दस्त या उलटी हो सकती है। इसका प्रयोग प्रायः मालिश करने या शरीरके बाहरी भागमें लगानेके काम आता है। यह आयोडीन (Iodine)-से अधिक गुणकारी है।

यह रक्त एवं स्नायुको उत्तेजित करता है। शरीरमें गर्मी बढ़ाता है। यह सभी प्रकारके वातरोग और कफरोगोंमें लाभ देता है।

(२) नारंगी (Orange) **रंग—**यह रक्तसंचारकी वृद्धि करता है, मांसपेशियोंको स्वस्थ रखता है और मानसिक शक्ति तथा इच्छाशक्तिको बढ़ाता है। बुद्धि और साहसको विकसित करता है। कफ-जन्य रोगोंका नाशक है।

यह कफ-जन्य रोग खाँसी, बुखार, निमोनिया, इनफ्लुएन्जा, श्वासरोग, क्षयरोग, पेटमें गैस बनना, हृदयरोग, गठिया, पक्षाघात, अजीर्ण, एनीमिया, रक्तमें लालकणोंकी कमीवाले रोगोंके लिये लाभप्रद हैं। माँके स्तनोंमें दूधकी वृद्धि करता है।

(३) पीला (Yellow) **रंग—**यह शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्यके लिये अत्युत्तम है। यह हल्का रेचक भी है। पाचन-संस्थानको ठीक करता है। यह हृदय एवं उदररोगोंका नाशक है। इसकी प्रकृति उष्ण है, अतः पेचिश आदिमें इसे न ले।

यह पेटदर्द, पेट फूलना, क़ब्ज़, कृमिरोग एवं मेदरोग, तिल्ली, हृदय, जिगर और फेफड़ेके रोगोंमें भी लाभप्रद है। यह युवा पुरुषोंको तत्काल लाभ देता है। इसका पानी थोड़ी मात्रामें ही लेना चाहिये।

(४) हरा (Green) **रंग**—यह प्रकृतिका रंग है। समशीतोष्ण है। यह शरीर और मनको प्रसन्नता देता है। शरीरकी मांसपेशियोंका निर्माण करता है और उन्हें शक्ति देता है। मस्तिष्क और नाडी-संस्थानको बल देता है। रक्तशोधक है।

यह वातजन्य रोग, टाइफॉइड, मलेरिया आदि ज्वर, यकृत् और गुर्दोंकी सूजन, सभी चर्मरोग, फोड़ा-फुंसी, दाद, नेत्ररोग, मधुमेह, सूखी खाँसी, जुकाम, बवासीर, कैंसर, सिरदर्द, रक्तचाप, एक्जिमा आदि रोगोंमें लाभप्रद है।

(५) आसमानी (Blue) **रंग**—यह शीतल है। पित्त-जन्य रोगोंके लिये विशेष लाभकारी है। यह प्यास और आमाशयिक उत्तेजनाको शान्त करता है। यह अच्छा पोषक टॉनिक और एन्टीसेप्टिक है। सभी प्रकारके ज्वरोंके लिये रामबाण है। रक्त-प्रवाहको रोकता है। कफज रोगोंमें इसका प्रयोग न करे।

यह ज्वर, खाँसी, दस्त, पेचिश, संग्रहणी, दमा, सिरदर्द, मूत्ररोग, पथरी, त्वचारोग, नासूर, फोड़े-फुंसी, मस्तिष्क आदि रोगोंमें लाभप्रद है।

(६) नीला, गहरा नीला (Indigo) **रंग**—यह भी शीतल है। यह जीवमात्रको जीवनीशक्ति देता है। यह शीतलता और शान्ति देता है। कुछ क़ब्ज़ करता है। शरीरपर इसकी क्रिया अतिशीघ्र होती है।

यह आमाशय, अण्डकोश-वृद्धि, प्रदर, योनिरोग आदि रोगोंमें विशेष उपयोगी है। यह गर्मीके सभी रोगोंको दूर करता है।

(७) बैंगनी (Violet) **रंग**—इसके गुण प्रायः नीले रंगके तुल्य हैं। यह रक्तमें लाल कणोंकी वृद्धि करता है। खूनकी कमीको दूर करता है। क्षय-रोगमें विशेष उपयोगी है। इससे अच्छी नींद आती है।

उक्त विवेचनके आधारपर कहा जा सकता है कि सूर्य वस्तुतः चर-अचर जगत्की आत्मा है। नीरोगताके लिये सूर्यकी शरणमें जाना अत्युत्तम है।

रोगोंका यौगिक निदान एवं चिकित्सा

(श्रीसोमचैतन्यजी श्रीवास्तव)

आरोग्य मनुष्य-जीवनमें प्राप्तव्य चारों पुरुषार्थों—धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका मूल है। योग-साधनामें भी व्याधिको योगका सर्वप्रमुख विघ्न माना गया है। अतएव लौकिक या अलौकिक पुरुषार्थके सम्पादनमें समर्थ बने रहनेके लिये आरोग्यवान्—आधि-व्याधिशून्य बने रहना अत्यन्त आवश्यक है। आयुर्वेदके अनुसार स्वस्थ पुरुषका लक्षण है आत्मा, मन एवं इन्द्रियोंके प्रसन्न रहनेके साथ-साथ शरीर-स्थित दोष—अग्नि, धातु, मल एवं क्रियाओंका सम-अवस्थामें रहना—

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनः स्वस्थ इत्यभिधीयते॥

समत्व ही योगका एवं सृष्टिव्यवस्थाका मूल आधार है। विषमतासे ही विकारकी उत्पत्ति होती है। सूक्ष्मदृष्टि रखनेवाले ऋषि एवं योगिगण केवल शारीरिक रोग एवं बाह्य वैषम्यपर ही नहीं; अपितु इनके उत्पादक सूक्ष्म शरीरके वैषम्यको भी दृष्टिमें रखते थे तथा उस विषमताको भी उत्पन्न करनेवाले कारणोंको दूरकर शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक तीनों प्रकारके स्वास्थ्य-लाभका उपदेश देते रहे हैं। स्वास्थ्यके विकार कर्मदोष, दुर्वृत्त, प्रज्ञाविकार, रजोगुण एवं तमोगुणका प्रभाव, शरीरगत पञ्चभूतोंमेंसे किन्हींका क्षय, श्वास-प्रक्रियामें विपर्यय, वातादि दोषोंकी वृद्धि, अपथ्य-भोजन आदि कारणोंसे होते हैं। आयुर्वेदिक दृष्टिसे व्यक्ति या जनपदमें होनेवाले व्याधि—दुःखका कारण प्रज्ञाविकार है। बुद्धि शरीर-सत्ताकी संचालिका है। बुद्धिमें लोभ, मोह, क्रोध, अभिमान आदिकी उत्पत्ति होनेसे व्यक्ति अधर्माचरण करने लगता है। अतः उस अधर्माचरणके

फलस्वरूप नाना प्रकारकी व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं, जिनसे सभी व्यक्ति दु:खी होते हैं। व्यक्तिगत अधर्माचरणका फल व्यक्तिको व्याधिके रूपमें मिलता है एवं समूहरूपमें किये गये अधर्मका फल जाति, समुदाय, ग्राम, नगर, प्रान्त, राष्ट्र एवं विश्वको व्यापक व्याधियों एवं अन्य उपद्रवोंके रूपमें मिलता है।

हठयोगके अनुसार भौतिक शरीरके दोषोंको दूर करनेके लिये एवं स्वस्थ बने रहनेके लिये षट्कर्म, आसन, प्राणायाम, मुद्रा, धारणा एवं ध्यानका आलम्बन लेना चाहिये। षट्कर्मका उपयोग प्रवृद्ध कफ-दोषको दूर करके वात, पित्त एवं कफ—इन तीनों दोषोंको समभावमें स्थापित करनेके लिये होता है। यदि कफ-दोष बढ़ा न हो तो जिस अङ्गमें विकार या अशक्ति प्रतीत हो, उसी अङ्गको बलवान् बनाने या उस अङ्गसे विकारको दूर करनेके लिये षट्कर्मोंमेंसे यथावश्यक दो या तीन अथवा चार कर्मोंका अभ्यास करना चाहिये। धौति, वस्ति, नेति, त्राटक, नौलिक तथा कपालभाति—इन छ: क्रियाओंको 'षट्कर्म' कहते हैं। धौति-कर्म कण्ठसे आमाशयतकके मार्गको स्वच्छ करके सभी प्रकारके कफरोगोंका नाश कर देता है। यह विशेषरूपसे कफप्रधान कास, श्वास, प्लीहा एवं कुष्ठरोगमें लाभकारी है। वस्ति-कर्मद्वारा गुदामार्ग एवं छोटी आँतके निचले हिस्सेकी सफाई हो जाती है। इससे अपानवायु एवं मलान्त्रके विकारसे उत्पन्न होनेवाले रोगोंका शमन हो जाता है। आँतोंकी गर्मी शान्त होती है, कोष्ठबद्धता दूर होती है। आँतोंमें स्थित—संचित दोष नष्ट होते हैं। जठराग्निकी वृद्धि होती है। अनेक उदररोग नष्ट होते हैं। वस्ति-कर्म करनेसे वात-पित्त एवं कफसे उत्पन्न अनेक रोग तथा गुल्म, प्लीहा और जलोदर दूर होते हैं। नेति-कर्म नासिकामार्गको स्वच्छ कर कपाल-शोधनका कार्य करता है। यह विशेषरूपसे नेत्रोंको उत्तम दृष्टि प्रदान करता है और गलेसे ऊपर होनेवाले दाँत, मुख, जिह्वा, कर्ण एवं शिरोरोगोंको नष्ट करता है। त्राटक-कर्मद्वारा नेत्रोंके अनेक रोग नष्ट होते हैं एवं तन्द्रा, आलस्य आदि दोष नष्ट होते हैं। उदररोग एवं अन्य सभी दोषोंका नाश करनेके लिये नौलिक प्रमुख है। यह मन्दाग्निको नष्टकर जठराग्निकी वृद्धि करता है तथा भुक्तान्नको सुन्दर प्रकारसे पचानेकी शक्ति प्रदान करता है। इसका अभ्यास करनेसे वातादि दोषोंका शमन होनेसे चित्त सदा प्रसन्न रहता है। कपालभाति विशेषरूपसे कफ-दोषका शोषण करनेवाली है। षट्कर्मोंका अभ्यास करनेसे जब शरीरान्तर्गत कफ-दोष—मलादिक क्षीण हो जाते हैं, तब प्राणायामका अभ्यास करनेसे अधिक शीघ्र सफलता मिलती है।

जिन्हें पित्तकी अधिक शिकायत रहती है, उनके लिये गजकर्णी या कुंजल-क्रिया लाभदायक रहती है। इस क्रियामें प्रात:काल शौचादिसे निवृत्त होनेके बाद पर्याप्त मात्रामें नमकमिश्रित कुनकुना जल पीकर फिर वमन कर दिया जाता है। इससे आमाशयस्थ पित्तका शोधन होता है। जिन्हें मन्दाग्निकी शिकायत है या जिनका स्वास्थ्य उत्तम भोजन करनेपर भी सुधरता नहीं है, उन्हें अग्निसार नामक क्रियाका अभ्यास करना चाहिये। इस क्रियामें नाभिग्रन्थिको बार-बार मेरु-पृष्ठमें लगाना होता है। एक सौ बार लगा सकनेका अभ्यास हो जानेपर समझना चाहिये कि इस क्रियामें परिपक्वता प्राप्त हो गयी है, यह सभी प्रकारके उदररोगोंको दूर करनेमें सहायक है।

आसनका अभ्यास शरीरसे जडता, आलस्य एवं चञ्चलताको दूर करके सम्पूर्ण स्नायु-संस्थान एवं प्रत्येक अङ्गको पुष्ट बनानेके लिये होता है। इसके अभ्याससे शरीरके अङ्गोंके सभी भागोंमें एवं सूक्ष्मातिसूक्ष्म नाडियोंमें रक्त पहुँचता है, सभी ग्रन्थियाँ सुचारु रूपसे कार्य करती हैं। स्नायु-संस्थान बलवान् हो जानेपर साधक काम, क्रोध, भय आदिके आवेगोंको सहनेमें समर्थ होता है। वह मानस-रोगी नहीं बनता। शरीरका स्वास्थ्य मस्तिष्क, मेरुदण्ड, स्नायु-संस्थान, हृदय एवं फेफड़े तथा उदरके बलवान् होनेपर निर्भर है। अत: आसनोंका चुनाव इनपर पड़नेवाले प्रभावोंको दृष्टिमें रखकर करना चाहिये। जिसका जो अङ्ग कमजोर हो उसे सार्वाङ्गिक व्यायामके आसनोंका अभ्यास करनेके साथ-साथ उन दुर्बल अङ्गोंको पुष्ट करनेवाले आसनोंका अभ्यास विशेषरूपसे करना चाहिये। ध्यानके उपयोगी पद्मासन आदिको सर्वरोगनाशक इसलिये कहा जाता है कि इन आसनोंसे ध्यान या जपमें बैठनेपर शरीरमें

साम्यभाव, निश्चलता, शान्ति आदि गुण आ जाते हैं, जो भौतिक स्तरपर सत्त्वगुणकी वृद्धि करनेमें सहायक होते हैं। आरोग्यकी दृष्टिसे किये जानेवाले आसनोंमें पश्चिमोत्तान, मत्स्येन्द्र, गोरक्ष, सर्वाङ्ग, मयूर, भुजंग, शलभ, धनु, कुक्कुट, आकर्षणधनु एवं पद्म-आसन मुख्य हैं।

आसनोंको शनैः-शनैः किया जाय, जिससे अङ्गों एवं नाडियोंमें तनाव, स्थिरता, संतुलन, सहनशीलता एवं शिथिलता आ सके। अपनी पूर्ववत् स्थितिमें भी धीरे-धीरे ही आना चाहिये। जो अङ्ग रोगी हो, उस अङ्गपर बोझ डालनेवाले आसनोंका अभ्यास अधिक नहीं करना चाहिये। जैसे जिनके पेटमें घाव है या जो स्त्रियाँ मासिक-धर्मसे युक्त हैं, उन्हें उन दिनों पेटके आसन नहीं करने चाहिये। जिस आसनका प्रभाव जिस ग्लैंड्स या नाडी-चक्रपर पड़ता है—आसन करते समय वहीं ध्यान केन्द्रित करना चाहिये तथा गायत्री आदि मन्त्रोंका या तेज, बल, शक्ति देनेवाले मन्त्रोंका यथाशक्ति स्मरण करना चाहिये। एक आसनके बाद उसका प्रतियोगी आसन भी करना चाहिये। यथा—पश्चिमोत्तान-आसनका प्रतियोगी भुजंगासन और शलभासन है। हस्तपादासनका प्रतियोगी चक्रासन है। सर्वाङ्गासनका अभ्यास आवश्यक है। सूर्यनमस्कारको अन्य आसनोंके अभ्यासके पूर्व कर लेना लाभकारी है।

प्राणायामका अभ्यास शरीरस्थ सभी दोषोंका निराकरण कर प्राणमयकोष एवं सूक्ष्म शरीरको नीरोग तथा पुष्ट बनाता है। नाडी-शोधनका अभ्यास करनेके बाद ही कुम्भक प्राणायामोंका अभ्यास करना चाहिये। प्राणायामके सभी अभ्यास युक्तिपूर्वक शनैः-शनैः ही करने चाहिये तथा भस्त्रिका प्राणायामको छोड़कर सभी शेष प्राणायामोंमें रेचक एवं पूरक, दोनोंकी क्रियाएँ बहुत धीरे-धीरे करनी चाहिये। प्रत्येक कुम्भकको अपनी-अपनी दोषनाशक विशेष शक्ति है। अतः प्रवृद्ध दोषका विचार करके ही उसके दोषनाशक कुम्भकका अभ्यास करना चाहिये। सूर्यभेद प्राणायाम पित्तवर्धक, जरादोषनाशक, वातहर, कपालदोष एवं कृमिदोषको नष्ट करनेवाला है। उज्जायी कफरोग, क्रूरवायु, अजीर्ण, जलोदर, आमवात, क्षय, कास, ज्वर एवं प्लीहाको नष्ट करता है। स्वास्थ्य एवं पुष्टिकी प्राप्तिके लिये उज्जायी प्राणायामका विशेष रूपसे अभ्यास करना चाहिये। शीतली प्राणायाम अजीर्ण, कफ, पित्त, तृषा, गुल्म, प्लीहा एवं ज्वरको नष्ट करता है। भस्त्रिका प्राणायाम वात-पित्त-कफ-हर, शरीराग्निवर्धक एवं सर्वरोगहर है। व्यवहारमें संध्योपासनाके उपरान्त एवं जपसे पूर्व नाडी-शोधन, उज्जायी एवं भस्त्रिका प्राणायामका नित्य अभ्यास करनेका प्रचलन है।

रोग-निवारणके लिये स्वर-योगका आश्रय भी लिया जाता है। नीरोगताके लिये भोजन सदा दायाँ स्वर (श्वास) चलनेपर करना चाहिये। वाम स्वर शीतल एवं दक्षिणस्वर उष्ण माना जाता है। इसके अनुसार ही वात एवं कफ-प्रधान रोगोंमें दक्षिण नासिकासे श्वासको चलाया जाता है एवं पित्तप्रधान रोगमें वाम स्वरसे श्वासको चलाया जाता है। सामान्य नियम यह है कि रोगके प्रारम्भकालमें जिस नासिकासे श्वास चल रहा होता है, उसे बंद करके दूसरी नासिकासे श्वास रोग-शमन होनेतक चलाया जाता है। इस स्वर-परिवर्तनसे प्रवृद्ध दोषका संशमन हो जाता है। स्वरयोगकी जानकारीके लिये 'शिवस्वरोदय' एवं 'स्वर-चिन्तामणि' नामक ग्रन्थोंका अवलोकन करना चाहिये।

मुद्राओंके अभ्यासमें महामुद्रा, खेचरी, उड्डीयानबन्ध, जालन्धरबन्ध, मूलबन्ध एवं विपरीतकरणी मुख्य हैं। महामुद्रा क्षय, कुष्ठ, आवर्त, गुल्म, अजीर्ण आदि रोगों एवं सभी दोषोंको नष्ट करती है। इसके अभ्याससे पाचन-शक्तिकी प्रचण्ड वृद्धि होकर विषको भी पचानेकी क्षमता प्राप्त होती है। महामुद्राके साथ महाबन्ध एवं महावेधका भी अभ्यास किया जाता है। इन तीनोंके अभ्याससे वृद्धत्व दूर होता है एवं अनेक शारीरिक सिद्धियोंकी प्राप्ति होती है। खेचरी मुद्राके अभ्याससे शरीरमें अमृतत्व धर्मकी वृद्धि होती है। सिद्धियोंकी प्राप्ति होती है। शरीरकी सोमकलाका विकास होता है तथा देह-क्षयकी प्रक्रिया रुक जाती है। उड्डीयानका अभ्यास उदर एवं नाभिसे नीचे स्थित अङ्गोंके रोगोंको दूर कर पुरुषत्वकी अभिवृद्धि करता है। जननाङ्ग एवं प्रजननाङ्गके रोगोंसे पीडित नर-नारियोंको उड्डीयानबन्धका विशेष अभ्यास करना चाहिये। जालन्धरबन्धसे कण्ठ-रोगों एवं शिरोरोगोंका नाश होता है तथा मूलबन्धका अभ्यास गुदा एवं जननेन्द्रियपर, प्राण एवं अपानपर नियन्त्रण प्रदान करता

है। उड्डीयान एवं जालन्धरबन्धका अभ्यास तो प्राणायामके समय ही किया जाता है, परंतु मूलबन्धका अभ्यास सतत करना चाहिये। विपरीतकरणी मुद्राका ठीक-ठीक अभ्यास वलीपलितको दूर कर युवावस्था प्रदान करता है।

पूर्वोक्त मुद्राओंके अतिरिक्त घेरण्डसंहिताप्रोक्त कुछ अन्य मुद्राओंका अभ्यास भी रोगनाश, वलीपलितविनाश एवं स्वास्थ्य-लाभके लिये उपयोगी है। इनमेंसे नभोमुद्रा एवं माण्डूकीमुद्रा तालुस्थित अमृतपानमें सहायक होनेके कारण सभी रोगोंका नाश करनेवाली है। आश्विनी मुद्रा गुह्यरोगोंका नाश करनेवाली, अकालमृत्युको दूर करनेवाली तथा बल एवं पुष्टि प्रदान करनेवाली है। पाशिनी मुद्रासे बल एवं पुष्टिकी प्राप्ति होती है। तड़ागी मुद्रा एवं भुजंगिनी मुद्रा—ये दोनों ही उदरके अजीर्णादि रोगोंको नष्टकर दीर्घ जीवन प्रदान करती हैं।

रोगोंको दूर करनेमें ध्यान अथवा चिन्तनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। ध्यानसे शरीर, प्राण, मन, हृदय एवं बुद्धिमें शान्ति, पवित्रता एवं निर्मलता आती है। 'सदा प्राणिमात्रके कल्याणका विचार करनेसे एवं सभी सुखी हों, नीरोग हों, शान्त हों'—इस प्रकारकी भावनाओंकी तरङ्गोंको सभी दिशाओंमें प्रसारित करनेसे स्वयंको सुख तथा शान्तिकी प्राप्ति होती है। व्यक्ति जैसा चिन्तन करता है, प्राय: वह वैसा बन जाता है। 'मैं नीरोग हूँ, स्वस्थ हूँ'—ऐसा चिन्तन निरन्तर दृढ़तापूर्वक करते रहनेसे आरोग्य बना रहता है। इसे आत्मसम्मोहन 'ऑटो सजेशन' की विधि कहते हैं। इसी प्रकार प्रबल संकल्पशक्तिके द्वारा अपने या दूसरेके रोगोंको भी दूर किया जाता है। रोगनिवारणके लिये प्रमुख बात यह है कि रोग होनेपर उसका चिन्तन ही न करे, उसकी परवाह ही न करे। रोगका चिन्तन करनेसे रोग बद्धमूल हो जाता है एवं व्यक्तिका मनोबल दुर्बल हो जाता है। मानसिक रोगोंका संकल्पशक्ति एवं प्रज्ञाबलसे निवारण करना चाहिये एवं शारीरिक रोगोंका औषधोंसे। इन रोगोंके उन्मूलनमें यौगिक साधनोंका अद्भुत योगदान रहा है।

शारीरिक एवं मानसिक रोगोंसे मुक्ति चाहनेवालोंको योग-क्रियाओंका अभ्यास करनेके साथ-साथ रोगोत्पादक सभी मूल कारणोंका त्याग करना चाहिये तथा अपने लिये अनुकूल एवं चिकित्साशास्त्रद्वारा निर्दिष्ट सात्त्विक पथ्य, सदाचार एवं सत्कर्मका सेवन करना चाहिये। यथासम्भव अनिष्ट-चिन्तनसे बचना चाहिये तथा चित्तको राग-द्वेष-मोहादि दोषोंसे दूर करना चाहिये। सम्पूर्ण दु:खोंका मूल कारण तमोगुणजनित अज्ञान, लोभ, क्रोध तथा मोह है। त्रिगुणके प्रभाव तथा अज्ञानके बन्धनसे मुक्त होनेका एकमात्र उपाय योग है तथा योग-बलसे भी बड़ी शक्ति है भगवान्‌की अनुग्रह-शक्ति।

अतएव अहंता-ममताका त्याग करके भगवच्चरणोंका एकमात्र आश्रय लेकर योगसाधना करनेसे शारीरिक व्याधिके साथ-साथ त्रिविध ताप एवं भवव्याधि भी कट जाती है और ऐसा साधक पूर्णतम आनन्दको प्राप्त करनेमें सर्वथा समर्थ हो जाता है।

प्राकृतिक चिकित्सा क्या है ?

(डॉ० श्रीविमलकुमारजी मोदी, एम०डी०, एन०डी०)

जिन लोगोंने प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणालीके आधारभूत सिद्धान्तोंको नहीं समझा है, वे ऐसा कुछ समझते हैं कि यह कुछ खब्तों और वादोंका संग्रहमात्र है—कहींकी ईंट और कहींका रोड़ा लेकर भानमतीका कुनबा जोड़ा गया है और जो लोग इसके सिद्धान्तों और तथ्योंका प्रचार करते हैं, वे खब्ती हैं। कारण यह है कि वर्तमान पीढ़ीपर 'विज्ञान' शब्दका जादू इस प्रकार काम कर गया है कि लोग अपने शरीरमें निहित आरोग्यदायिनी प्राकृतिक शक्तियोंके सम्बन्धमें सरल, स्पष्ट और तर्कपूर्ण तथ्योंको सुनने तथा समझनेके लिये तैयार ही नहीं होते।

'प्रकृतिद्वारा रोगोपशमन' शब्दोंका प्रयोग उस आरोग्य-दायिनी शक्तिका द्योतन करनेके लिये किया जाता है, जो प्रत्येक जीवित प्राणीके शरीरमें अन्तर्निहित है। न तो यह कुछ वादोंका संग्रहमात्र है और न ऐसा कोई खब्त ही है,

जो प्रचलित हो गया है। यह तो उसी समयसे व्यवहारमें आ रहा है, जबसे इस पृथ्वीपर जीवनका आरम्भ हुआ। प्राचीन कालमें आरोग्य-प्राप्तिका एकमात्र उपचार समझकर ही इसका आश्रय लिया जाता था; पर सभ्यता और तथाकथित विज्ञानके आगमनसे इसका परित्याग कर दिया गया।

आधारभूत सिद्धान्त

आरोग्य-लाभकी प्राकृतिक प्रणालीका अर्थ भलीभाँति समझनेके लिये इसके आधारभूत सिद्धान्तोंको मनमें अच्छी तरह बैठा लेना आवश्यक है। शरीर अपनी स्वच्छता, पुनर्निर्माण और क्षति-पूर्ति-जैसी कुछ प्रक्रियाओंद्वारा प्राकृतिक रूपमें स्वास्थ्य-प्राप्तिका निरन्तर प्रयत्न करता रहता है। घावोंको भरकर और टूटी हुई अस्थिको जोड़कर प्रकृति अपनी क्षति-पूर्तिकी प्रवृत्तिका परिचय स्पष्टरूपसे दे देती है। जिस शक्तिके द्वारा सब पदार्थोंका नियमन होता है, वह सर्वदा कार्यरत रहती है और उसके अभावमें जीवनका अस्तित्व क्षणभर भी स्थिर नहीं रह सकता। यह मानव-शरीरमें ही नहीं, बल्कि पृथ्वीपर विद्यमान हर एक पदार्थ और जीवधारीके अंदर कार्य करती रहती है और हम चाहे जो कुछ करें, सोचें या विश्वास रखें, यह अपना काम बराबर करती जाती है।

यह पद्धति इस बातकी असंदिग्धरूपसे शिक्षा देती है कि शरीरमें जो भी विकार या बीमारी होती है, वह वस्तुत: शरीरके प्राकृतिक रूपमें आत्म-परिष्कारका प्रयत्नमात्र है। यदि जनताका मस्तिष्क तथाकथित विज्ञान और रोगोत्पत्तिके कारणोंके मूलमें कीटाणुओंके होनेके सिद्धान्तसे, जिसे बहुत बढ़ा-चढ़ाकर वर्णित किया जाता है और चिकित्सक तथा जनसाधारण भी अनुचितरूपमें समझे हुए हैं, अत्यधिक प्रभावित न हो गया होता तो वह प्राकृतिक प्रणालीको स्वीकार कर इससे अवश्य सहायता लेती।

कीटाणु और रोग

इस स्थलपर यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणाली कीटाणुओंके अस्तित्वको अस्वीकार नहीं करती; पर इसका कहना यह है कि वे रोगकी उत्पत्तिके कारण ही नहीं होते, जिसके लिये उनको इतना बदनाम किया जाता है। प्राकृतिक प्रणालीके अनुसार रोगके कीटाणु गंदगी और विषाक्त पदार्थके मौजूद होनेपर ही प्रकट होते हैं और बढ़ते हैं। शरीर तबतक किसी संक्रामक रोगसे आक्रान्त नहीं हो सकता, जबतक उस विशेष रोगके कीटाणुओंके बढ़ने योग्य पहलेसे क्षेत्र तैयार न हो। रोगोत्पत्तिके कारणोंके सम्बन्धमें प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणालीका सिद्धान्त ज्यादा गहराईतक पहुँचता है। यह इस बातकी शिक्षा देता है कि सर्दी, बुखार, सीने या किसी अङ्गमें जकड़न, सूजन अथवा जलन, ग्रन्थिशोथ आदि सभी तीव्र रोग, जिनमेंसे प्रत्येकपर प्रचलित चिकित्सा-प्रणालीने एक स्वतन्त्र रोग होनेका 'लेबल' लगा रखा है, एक ही-जैसे हैं अर्थात् वे सभी शरीरमें गंदगी एकत्र होने और उसके विषाक्त होनेके स्वाभाविक परिणाम हैं। उसका यह भी कहना है कि तीव्र रोग विषको प्रभावहीन कर उसे बाहर निकालनेके प्रकृतिके प्रयत्नका प्रकट चिह्न है। यदि उसे निकालना सम्भव न हुआ तो प्रकृति उसे एक जगह अलग कर देनेका प्रयत्न करती है, जिससे वह हानिकर न हो।

प्रकृतिको सहायता

प्रकृतिके इस शक्तिके साथ मिलकर कार्य करना या उसके विरुद्ध आचरण करना बहुत कुछ हमारी इच्छापर निर्भर है; पर यदि इस विषयपर गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाय तो प्रकृतिके साथ मिलकर काम करना ही हमारे लिये श्रेयस्कर होगा, इसलिये उपचारसम्बन्धी जो प्रणाली काममें लायी जाय उसका शरीर-विज्ञानके सिद्धान्तकी दृढ़ नींवपर टिकना आवश्यक है और जिसे हम शरीरका प्राकृतिक नियम समझ रहे हैं, उसके कार्यान्वित होनेमें किसी प्रकारकी बाधा नहीं आनी चाहिये। इसी उद्देश्यकी पूर्तिके लिये प्राकृतिक चिकित्सक तीव्र रोगोंमें, जब कि शारीरिक क्रियाकी दृष्टिसे शरीरको पूर्ण विश्रामकी जरूरत मालूम होती है, खानेसे परहेज कराते हैं और जीर्ण रोगोंमें विकारको बाहर निकालनेके लिये प्रकृतिको सहायता देनेके विचारसे आवश्यकताके अनुसार या तो उपवास कराते हैं या केवल फल अथवा शाकका रस देकर आंशिक उपवास कराते हैं।

सबसे बड़ी प्रयोगशाला

हमें यह समझकर कि नीरोग करनेकी शक्ति

उपचारमें है, कभी अपनेको भुलावेमें नहीं रखना चाहिये। आरोग्यतापर हमेशा प्रकृतिका ही विशेषाधिकार रहता है। शरीरकी निर्बलता या विकार दूर करनेमें प्रकृतिको सहायता पहुँचानेके लिये हमें बड़ी-बड़ी प्रयोगशालाओंमें प्रयोगात्मक अनुसंधान-केन्द्रों या दवाएँ तैयार करनेके लिये व्यापारिक ढंगपर चलाये जानेवाले कारखानोंकी जरूरत नहीं प्रतीत होती। प्रकृतिने इस शरीरको सबसे बड़ी प्रयोगशालाके रूपमें तैयार किया है, जिसमें रासायनिक प्रक्रियाएँ इतने ऊँचे शिखरपर पहुँची हुई हैं कि हमारी दृष्टि वहाँ पहुँचनेमें सर्वथा असमर्थ हो जाती है और जिसमें रक्षणात्मक क्षमताके साधन सर्वदा उचित नियन्त्रणमें रहते हैं।

प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणाली इस मतका प्रचार करती है कि रोगका सिर्फ एक कारण होता है। यह जीवनयापन और आरोग्य-लाभके लिये जिस ढंगका प्रतिपादन करती है, वह वैज्ञानिक होनेके साथ ही विवेकपूर्ण एवं सरल भी है और स्वास्थ्य-लाभके लिये जिसका अर्थ मस्तिष्क तथा शरीरका एक होकर या अखण्डरूपमें रहना है—स्वयं अपनेमें और प्राकृतिक शक्तियोंके साथ सामञ्जस्य होना आवश्यक बतलाती है।

प्राकृतिक चिकित्साके सिद्धान्त

(डॉ० श्रीशरदचन्द्रजी त्रिवेदी, एम०डी०)

शरीरमें दूषित, विषाक्त एवं विजातीय पदार्थोंके एकत्र होनेसे रोग उत्पन्न होते हैं। इन पदार्थोंके एकत्र होनेका मुख्य स्थान पेट है। इसलिये यदि पेट स्वस्थ है तो हम भी स्वस्थ हैं और पेट बीमार तो हम बीमार। जो भोजन हम लेते हैं उसमें ७५ प्रतिशत क्षारतत्त्व एवं २५ प्रतिशत अम्लतत्त्व होना चाहिये। यदि भोजनमें २५ प्रतिशतसे अधिक अम्लीय आहार लिया जाता है तो रक्तमें अधिक खटाई हो जाती है, इस कारण वह दूषित हो जाता है। शरीर इस दूषित पदार्थको पसीने एवं मूत्रद्वारा अंदरसे बाहर निकालनेकी चेष्टा करता है। यदि बाहर नहीं निकलता है तो शरीर रोगग्रस्त हो जाता है। इस प्रकार जो आहार (भोज्य पदार्थ) पच नहीं पाता अर्थात रस-रक्तमें परिवर्तित नहीं हो पाता, वह शरीरके लिये विजातीय पदार्थ है। उसे बाहर निकाल देना चाहिये। उसका कुछ अंश भी यदि शरीरमें रह जाय तो वह रक्त-संचरणके द्वारा समस्त शरीरमें फैलकर दूषित विकार एवं रोग उत्पन्न करता है। प्राकृतिक चिकित्साद्वारा इन्हीं विजातीय पदार्थोंको हटाकर शरीरको स्वस्थ किया जाता है।

प्राकृतिक चिकित्सामें पञ्चमहाभूत—पृथ्वी, जल, तेज, वायु एवं आकाशद्वारा चिकित्सा की जाती है। बिना औषधके मिट्टी, पानी, हवा (एनिमा), सूर्य-प्रकाश, उपवास एवं फलों, सब्जियोंद्वारा चिकित्सा की जाती है। आहार, ऋतुचर्या, दिनचर्या, रात्रिचर्यापर विशेष ध्यान दिया जाता है तथा प्रकृतिके निकट रहनेका अधिकाधिक प्रयास किया जाता है।

प्राकृतिक चिकित्सामें मिट्टी, जल, धूप एवं उपवासका उपयोग

(१) मिट्टी-चिकित्साका उपयोग—

इस पञ्च-भूतात्मक शरीरमें मिट्टी (पृथ्वीतत्त्व)-की प्रधानता है। मिट्टी हमारे शरीरके विषों, विकारों, विजातीय पदार्थोंको निकाल बाहर करती है। यह प्रबल कीटाणुनाशक है। मिट्टी विश्वकी महानतम औषधि है।

मिट्टी-चिकित्साके प्रकार—(क) मिट्टीयुक्त जमीनपर नंगे पाँव चलना—स्वच्छ धरतीपर, बालू, मिट्टी या हरी दूबपर प्रात:-सायं भ्रमण करनेसे जीवनी-शक्ति बढ़कर अनेक रोगोंसे लड़नेकी क्षमता प्रदान करती है।

(ख) मिट्टीके बिस्तरपर सोना—धरतीपर सीधे लेटकर सोनेसे शरीरपर गुरुत्वाकर्षण-शक्ति शून्य हो जाती है। स्नायविक दुर्बलता, अवसाद, तनाव, अहंकारकी भावना दूर होकर नयी ऊर्जा एवं प्राण शरीरमें प्रविष्ट हो जाते हैं। इसके लिये सीधे धरतीपर या पलंगपर आठ इंचसे बारह इंचतक मोटी समतल बालू बिछाकर सोना चाहिये। प्रारम्भमें थोड़ी

कठिनाई होती है, परंतु अभ्यास करनेसे धीरे-धीरे आदत पड़ जाती है।

(ग) सर्वाङ्गमें गीली मिट्टीका लेप—सर्वप्रथम किसी अच्छे स्थानसे चिकनी मिट्टीको लाकर उसे कंकड़-पत्थररहित करके साफ-स्वच्छ करनेके बाद कूट-पीसकर छानकर शुद्ध जलमें बारह घंटेतक भिगो दे। उसके बाद आटेकी तरह गूँदकर मक्खन सदृश लोई बनाकर समस्त शरीरपर इस मुलायम मिट्टीको आधा सेमी० मोटी परतके रूपमें पेट, पैर, रीढ़, गर्दन, चेहरा, जननाङ्गों और सिरपर लेप करे। इसके बाद पौन घंटासे एक घंटातक धूप-स्नान ले। मिट्टी सूखनेसे त्वचामें खिंचाव होनेसे वहाँका व्यायाम होता है और रक्त-सञ्चार तीव्र होकर पोषण मिलता है। धूप-स्नानसे मिट्टीको पूर्णतः सुखाकर भलीभाँति स्नान करके विश्राम करे।

मिट्टीकी पट्टी तैयार करनेकी विधि—भुरभुरी चिकनी मिट्टी या काली मिट्टी किसी अच्छे स्थानसे लेकर उसे कूटकर एक-दो दिन धूपमें सुखा दे। कंकड़-पत्थर निकालकर साफ कर ले। इसे कूट-पीसकर छानकर बारह घंटेतक शुद्ध पानीमें भिगो दे। बारह घंटेके बाद लकड़ीकी करणी (पलटा)-से अच्छी तरह गूँदकर मक्खनकी तरह मुलायम कर ले। मिट्टीको इतना ही गीला रखे कि वह बहे नहीं (आटेके ढीलेपनसे थोड़ी कड़ी रखनी चाहिये)। मिट्टीकी पट्टीके लिये खादीका मोटा एवं सछिद्र कपड़ा अथवा जूटका टाट (पल्ली) काममें ले। अलग-अलग अङ्गोंके अनुसार बने साँचे (ट्रे)-में लकड़ीके पलटेसे मिट्टीको रखकर आधा इंच मोटी पट्टी बनावे। साँचा नहीं हो तो पत्थरकी शिला या लकड़ीके चौकोर पाटे (चौकी)-पर रखकर पट्टी बनावे।

इस पट्टीको पेट, रीढ़, सिर आदिपर सीधे सम्पर्कमें रखे। जिन रोगियोंको असुविधा हो तो साँचेमें नीचे खादीका सछिद्र कपड़ा या टाटकी एक तह बिछाकर उसपर मिट्टीकी पट्टी बनाकर चारों ओरसे पैक करके रखे। रोगीके अङ्गपर समतल तहवाला हिस्सा रखे। पट्टी रखनेके बाद ऊपरसे ऊनी वस्त्र या मोटे कपड़ेसे ढक दे। प्रत्येक रोगीका मिट्टी-पट्टीवाला वस्त्र अलग-अलग रखे। एक बार काममें ली हुई मिट्टीको दोबारा काममें नहीं ले। ठंडी मिट्टीकी पट्टी देनेसे पूर्व उस अङ्गको सेंकद्वारा किञ्चित् गरम कर ले। दुर्बल रोगी, श्वासरोग, दमा, जुकाम, तीव्र दर्द, साइटिका, आर्थराइटिस, गठिया, आमवात, गर्भावस्था, बच्चोंको यह प्रयोग यदि अरुचिकर एवं असुविधाजनक लगे तो नहीं करावे।

अङ्गोंके अनुसार अलग-अलग पट्टी बनाये

(अ) रीढ़की मिट्टी-पट्टी—डेढ़ फीट लम्बी एवं तीन इंच चौड़ी मिट्टीकी पट्टी बनाकर ग्रीवा-कशेरुकासे कटि-कशेरुकातक रखे।

(ब) सिरकी मिट्टी-पट्टी—८-१० इंच लम्बी, ४-६ इंच चौड़ी, आधा इंच मोटी पट्टी बनाकर सिरपर टोपीकी तरह रखे या कुछ छोटी बनाकर ललाटपर रखे।

(स) आँखकी मिट्टी-पट्टी—१० इंच लम्बी, ४ इंच चौड़ी, आधा इंच मोटी बनाकर आँखोंपर रखे।

(द) कानकी मिट्टी-पट्टी—कानोंमें रूई लगाकर कानपर गोलाकार मिट्टीकी पट्टी या लेप कर सकते हैं।

(य) पेटकी मिट्टी-पट्टी—एक फुट लम्बी, ६-८ इंच चौड़ी, आधा इंच मोटी पट्टी बनाकर नाभिसे लेकर नीचेतक, मध्य उदरपर रखनी चाहिये।

रीढ़, सिर तथा पेट तीनोंपर एक साथ मिट्टीकी पट्टी रखनेसे शिरःशूल (सिरदर्द), हाई ब्लडप्रेशर, तेज बुखार, मूर्च्छा, अनिद्रा, नपुंसकता, मस्तिष्क-ज्वर, स्नायु-दौर्बल्य, अवसाद, तनाव, मूत्ररोग इत्यादिमें लाभ होता है। आँखपर मिट्टी-पट्टी रखनेसे आँखोंके समस्त रोग, जलन, सूजन, दृष्टि-दोष दूर होते हैं। गलेकी सूजन, टांसिलाइटिस, स्वरयन्त्रकी सूजन (लैरिंजाइटिस) आदिमें स्थानीय वाष्प देकर गरम मिट्टीकी पुल्टिस बाँधे।

पेट, आमाशय, यकृत्, प्लीहा, कमर, जननाङ्ग, गुदाद्वार, अग्न्याशय आदि अङ्गोंपर मिट्टीकी पट्टी रखनेसे उनसे सम्बन्धित रोगोंमें लाभ मिलता है। पेटके प्रत्येक रोगमें पेडूपर मिट्टीकी पट्टी अवश्य देनी चाहिये।

(२) जल-चिकित्साके उपयोग

जल-चिकित्साकी विधियाँ—सामान्यतः हमारे शरीरमें ५५ प्रतिशतसे ७५ प्रतिशततक जल होता है। अतः जलका

महत्त्व स्वास्थ्यकी दृष्टिसे बहुत अधिक है—

(अ) गरम-ठंडा सेंक—सभी तरहके दर्द एवं सूजनमें इसके प्रयोगसे तुरंत लाभ मिलता है। सर्वप्रथम एक पात्रमें खूब गरम पानी तथा दूसरे पात्रमें खूब ठंडा (बर्फीला) पानी ले। तीन रोयेंदार तौलिये ले। गर्म पानीमें एक तौलियेके दोनों किनारे पकड़कर मध्यसे डुबोकर भिगो-निचोड़कर पीडित अङ्गपर रखे। ऊपर सूखा तौलिया ढक दे। तीन मिनटके बाद दूसरे तौलियेको ठंडे पानीमें भिगो-निचोड़कर दो मिनटतक पीडित अङ्गपर रखे। यह क्रम कम-से-कम पाँच बार करे। सेंक हमेशा गर्मसे प्रारम्भ करके ठंडेपर समाप्त करना चाहिये। समाप्तिके बाद सूखे तौलियेसे शुष्क घर्षण देकर स्थानीय लपेट बाँधकर आराम कराये। गर्म-ठंडे सेंकसे रक्त-वाहिनियाँ संकुचित प्रसरित होती हैं। विजातीय पदार्थ बाहर निकलते हैं। पेटके रोगोंमें गर्म-ठंडा सेंक एक मुख्य उपचार है। इससे चमत्कारिक लाभ मिलता है।

(ब) मेहन-स्नान (जननेन्द्रिय प्रक्षालन)—इस स्नानके लिये बैठनेके लिये ऐसा स्टूल हो जो सामनेकी ओरसे अर्द्धचन्द्राकारमें कटा हो ताकि उसपर बैठकर जननेन्द्रियपर पानी डालते समय नितम्ब या अन्य अङ्गपर पानीका स्पर्श नहीं हो सके। स्टूलके ठीक सामने उसकी ऊँचाईसे एक इंच नीचे ठंडे पानीसे भरा हुआ बड़ा पात्र (बेसिन) या चौड़े मुँहवाली बालटी रखनी चाहिये।

(स) कटि-स्नान—इसके लिये एक विशेष प्रकारका कुर्सीनुमा टब (लोहा, फाइबर, ग्लास या प्लास्टिक) लेकर उसमें पानी भरकर रोगीको बिठा देते हैं। रोगीके पैर टबसे बाहर एक पट्टेपर रखवा दिये जाते हैं। टबका पानी कमरसे लेकर जाँघोंके बीचवाले भागको डुबोकर रखता है। इस दौरान रोगी रोयेंदार तौलियेसे नाभि, पेडू, नितम्ब तथा जाँघोंको पानीके अंदर रगड़ते हुए मालिश करे।

रोगी निर्बल हो तो पैरोंको चौड़े मुँहके गर्म पानीके पात्रमें रखवाये एवं गर्दनतक कम्बल या गर्म कपड़ेसे ढक दे। ठंडे पानीका तापमान ५०° फा० से ८०° फा० तक रखना चाहिये। प्रारम्भमें सहने योग्य पानी रखे। थोड़ी देर बाद बर्फका पानी डालकर पानीका तापमान कम करते जाय। टबमें पानी उतना ही रखे कि उसमें रोगीके बैठनेपर पानी नाभितक आ जाय। कटि-स्नानसे पूर्व तथा कटि-स्नानके दौरान शरीरका कोई अन्य अङ्ग नहीं भीगना चाहिये। भोजन एवं कटि-स्नानके मध्य तथा कटि-स्नान एवं साधारण स्नानके मध्य एक घंटेका अन्तर रखना आवश्यक है। कटि-स्नान रोगीकी सहनशक्ति, स्थितिके अनुसार तीन मिनटसे प्रारम्भ करके बीस मिनटतक देना चाहिये।

कम ठंडे पानीका कटि-स्नान अधिक देरतक देनेकी अपेक्षा अधिक ठंडे पानीका कटि-स्नान थोड़ी देरतक देना ज्यादा लाभदायक होता है। ठंडे कटि-स्नानसे पूर्व तथा बादमें सूखे तौलियेसे घर्षण-स्नान करके शरीरको किञ्चित् गर्म कर लेना चाहिये, जिससे ठंडे पानीका प्रतिकूल असर नहीं पड़े। तीव्र कमर-दर्द, निमोनिया, खाँसी, अस्थमा (दमा), साइटिका, गर्भाशय-मूत्राशय-जननेन्द्रिय तथा आन्त्रकी तीव्र सूजनमें कटि-स्नान वर्जित है।

(द) वाष्प-स्नान—वाष्प-स्नानके लिये आजकल कई तरहके बने-बनाये यन्त्र मिलते हैं। सम्पूर्ण वाष्प-स्नानके लिये केबिननुमा पेटी होती है, जिसमें वाष्प निकलनेके लिये छोटे-छोटे छिद्र तथा ट्यूब लगे होते हैं। इन छिद्रोंका सम्बन्ध ताँबेकी या लोहेकी पतली पाइपद्वारा बॉयलर (वाष्प-उत्पादक यन्त्र)-से होता है। बॉयलर चलानेपर वाष्प केबिनमें या वाष्प-कक्षमें भर जाती है।

विधि—रोगीका सारा शरीर केबिनमें होता है। गर्दनके ऊपरका हिस्सा बाहर होता है। वाष्प-स्नानसे पूर्व सिर, चेहरा तथा गलेको ठंडे पानीसे धोकर सिरपर गीली तौलिया रखे। रोगीको नीबू, पानी, शहद या संतरेका रस १००-२०० मि०ली० तक पिला दे। पंद्रह-पंद्रह मिनटतक वाष्प-स्नान ले। इस दौरान अङ्ग-प्रत्यङ्गकी मालिश करनी चाहिये, जिससे विजातीय तत्त्व घुलकर त्वचासे बाहर निकलते हैं। वाष्प-स्नानके बाद ठंडे पानीसे स्नान करना चाहिये।

घरपर वाष्प-स्नान लेनेके लिये बंद कमरेमें मूँजकी चारपाईपर रोगीको लिटाकर कम्बलसे चारों ओर ढक दे तथा खाटके नीचे दो पतीलोंमें पानी भरकर उबाले। एक पात्र पैरोंकी तरफ और दूसरा पीठके नीचे रखे। रोगी

करवट बदल-बदलकर सारे शरीरपर वाष्प-स्नान ले।

(य) स्थानीय वाष्प-स्नान— आजकल रेडीमेड फेशियल सोना बाथ-जैसे यन्त्र बाजारमें मिलते हैं। इसके अलावा घरपर प्रेशर-कुकरकी सीटी हटाकर उसमें सात-दस फुट लम्बी पारदर्शक रबड़की पाइप लगाये। प्रेशर-कुकरको आधा पानीसे भरकर गर्म करे। भाप बननेपर किसी कपड़ेसे पाइपके दूसरे छोरको पकड़कर अलग-अलग अङ्गोंपर स्थानीय वाष्प दे। १०-१५ मिनटतक ही स्थानीय वाष्प ले। इसके तुरंत बाद ठंडे पानीमें भिगो-निचोड़कर तेजीसे घर्षण-स्नान देकर सूती-ऊनी लपेट बाँधे।

(र) गर्म-पाद-स्नान— दो टब या बालटी लें। उनमें गर्म पानी भरे। फिर सिर, चेहरा, गला धोकर सिरपर गीली तौलिया रखकर स्टूलपर बैठ जाय। दोनों पैरोंको बालटीमें रखे। गर्दनसे लेकर टबतकके हिस्सेको गर्म कम्बलसे इस तरह ढक दे कि भाप बाहर नहीं निकले। जबतक रोगीको पसीना नहीं आये, तबतक गर्म-पाद-स्नान दे। पसीना नहीं आये तो गर्म पानी पिलाये। टबमें पानी घुटनोंतक रखे। १०-१५ मिनटमें पसीना आने लगता है। पसीना आनेके बाद ठंडा स्नान, ठंडा घर्षण-स्नान अथवा स्पंज बाथ देकर आराम कराये। गर्म-पाद-स्नानसे रक्तप्रवाह पैरोंकी तरफ नीचे आता है। फलतः यकृत् और गुर्दे सक्रिय होकर दूषित विषोंको तेजीसे निकालने लगते हैं।

(ल) सूखा-घर्षण— एक अच्छी किस्मका रोयेंदार सूखा तौलिया लेकर हल्के हाथसे सर्वप्रथम बायें हाथपर फिर क्रमशः दायें हाथपर, दायें पैरपर, बायें पैर, पेडू, छाती, जंघा, पीठ, नितम्ब आदि समस्त अङ्गोंका घर्षण करे। इससे रक्त-संचरण तीव्र होकर त्वचा लाल हो जाती है। तत्पश्चात् ठंडे पानीसे स्नान कराये।

(व) ठंडा स्पंज-स्नान— बर्फका सादा पानी, ताजा पानी अथवा नीमके पत्तोंसे युक्त उबला पानी रोगीकी स्थितिके अनुसार तीन रोयेंदार तौलिये पानीमें बारी-बारीसे भिगोकर निचोड़कर घर्षण-स्नान करे। सबसे पहले बायाँ हाथ, दायाँ हाथ, दायाँ पैर, बायाँ पैर, पेडू, छाती, जंघा, पीठ, नितम्ब, गुदाद्वार, जननेन्द्रिय आदि अङ्गोंपर क्रमशः घर्षण-मालिश करे। पानी गंदला हो जानेपर बदलते रहे। अन्तमें सूखे तौलियेसे सारे शरीरका सूखा घर्षण करके शरीरको गर्म कर दे और विश्राम कराये।

(श) गीली चादरकी लपेट— दो कम्बल, एक सूती सफेद चादर, एक पतला कपड़ेका टुकड़ा, एक प्लास्टिककी चादर तथा दो तौलिये ले। पलंग या जमीनपर दोनों कम्बल बिछा दे। इसके ऊपर सफेद चादरको नीमके पत्तोंसे युक्त उबले पानीमें भिगो-निचोड़कर बिछाये। रोगीका सिर, चेहरा ठंडे पानीसे धो-पोंछकर एक गिलास गर्म पानी पिलाये तथा सिरपर गीली तौलिया बाँधे। लंगोट या कौपीन बाँधकर रोगीको निर्वस्त्र लिटा दे। पहले हाथोंको बाहर निकालकर सूती गीली चादरमें धड़को लपेट दे, फिर दोनों पैरोंको अच्छी तरह लपेटकर हाथों एवं गर्दनको भी लपेट दे ताकि सारा शरीर गीली चादरके सम्पर्कमें ही रहे। ऊपरसे कम्बलको भलीभाँति लपेट दे।

फिर प्लास्टिककी चादर भी लपेटकर ऊपर कम्बल लपेट सकते हैं। (यदि पसीना नहीं आ रहा हो तो) पाँचसे पंद्रह मिनटमें शरीरसे गर्मी निकलकर पसीना आने लगता है। त्वचा सक्रिय होकर रक्त-संचार तीव्र होने लगता है। इस उपचारसे यकृत्, प्लीहा, अग्न्याशय, पीलिया, पेटके रोग ठीक होते हैं। गीली चादरकी लपेट रोगीकी शारीरिक स्थितिके अनुसार १५—३० मिनटतक दे सकते हैं। गीली चादर-लपेटके बाद सामान्य स्नान कराये। लपेटके दौरान सिर-दर्द, चक्कर, मूर्च्छाके लक्षण दिखे तो उपचार बंद कर दे। पाण्डु (रक्ताल्पता), दुर्बलता, हृदय-रोग, अस्थमा, निमोनिया, गठिया आदि स्थितिमें गीली चादर-लपेट नहीं देनी चाहिये।

(ह) पेटकी लपेट— छः फुट लम्बी एवं बारह इंच चौड़ी सूती कपड़े एवं ऊनी कपड़ेकी पट्टी बनाये। ऊनी पट्टीके दूसरे सिरेपर डोरी बँधी हो। सर्वप्रथम पेटपर सेंक या स्थानीय भाप देकर उसे गर्म करे एवं सूती कपड़ेको पानीमें भिगो-निचोड़कर तीन बार पेटपर लपेट दे। सूती कपड़ेको ठंडे पानीमें भिगोये। इसके ऊपर सूखी ऊनी लपेट इस तरहसे बाँधे कि नीचेकी सूती लपेट नहीं दिखे और वायु अवरुद्ध हो जाय। लपेटको इतना ढीला नहीं छोड़े

कि वायु अंदर प्रवेश करके क्रियाहीनता उत्पन्न कर दे। इतनी बाँधें भी नहीं कि रक्तप्रवाह रुककर रोगीको बेचैनी होने लगे। पिण्डलियोंके लिये छ: फुट लम्बी एवं चार इंच चौड़ी लपेट प्रयोगमें लानी चाहिये।

(३) सूर्य-स्नान (धूप-स्नान)-का उपयोग

प्राकृतिक चिकित्सामें सूर्य-स्नानका विशेष महत्त्व है। इसके सेवनसे शरीरमें विटामिन-'डी' की प्राप्ति होती है।

स्थानका चुनाव—सूर्य-स्नानके लिये एकान्त स्थान होना चाहिये, जैसे—मकानकी छत, दीवारकी ओट आदि।

विधि—सूर्य-स्नानके समय शरीरसे कपड़े हटा देने चाहिये ताकि सूर्यकी किरणें सीधे शरीरपर पड़ें।

सर्वप्रथम धूपमें चित लेट जायँ। बादमें पेटके बल लेटकर सूर्य-स्नान लेना आरामदायक रहता है। सूर्य-स्नानके समय धूप सौम्य होनी चाहिये तथा सिरपर एक सूखा तौलिया रखें। यदि तेज धूप हो तो सिरपर गीला कपड़ा रखना आवश्यक है। धूप-स्नान लेते समय आँखें बंद रखनी चाहिये अन्यथा दृष्टि कमजोर होती है।

अवधि—सूर्य-स्नानकी समय-सीमा रोगीकी अवस्था, रोगकी तीव्रता-जीर्णता तथा ऋतुके अनुसार निश्चित करें। ग्रीष्म-ऋतुमें १०—३० मिनटतक तथा शीत-ऋतुमें २०—६० मिनटतक सूर्य-स्नान लें।

ऋतुकाल—ग्रीष्म-ऋतुमें प्रात: साढ़े सातसे आठ बजेके पूर्व सूर्य-स्नान लें एवं सायंकालमें साढ़े पाँचसे छ: बजेके पश्चात् सूर्य-स्नान लेना उपयुक्त रहता है। शीत-ऋतुमें प्रात: नौसे साढ़े नौके पहले एवं सायंकालमें चार बजेसे पाँच बजेके बाद सूर्य-स्नान लेना चाहिये। इस तरहसे संक्षेपमें प्राकृतिक चिकित्साकी विधियों-प्रविधियोंके बारेमें समझाया गया है।

फिर भी सावधानीपूर्वक रोग एवं रोगीकी स्थिति, अवस्था, देश, काल, बल आदिको ध्यानमें रखते हुए चिकित्सा-लाभ लें अथवा किसी योग्य प्राकृतिक चिकित्सककी देख-रेखमें उपचार कराना चाहिये।

(४) प्राकृतिक चिकित्सामें उपवासका महत्त्व

पेटके रोगोंमें उपवास (आकाश)-चिकित्साका सर्वाधिक महत्त्व है। रोगीकी अवस्थाके अनुसार अर्ध उपवास, एकाहार रसोपवास, फल-उपवास, दुग्ध-उपवास, मट्ठा-उपवास कराया जाता है। पूर्ण उपवासमें सादे जलके अलावा कुछ नहीं दिया जाता है।

उपवास-विधि—मानसिक रूपसे स्वयंको तैयार करें तथा शारीरिक दृष्टिसे प्रारम्भमें दो दिन भोजनकी मात्रा आधी कर दें। सब्जियाँ तथा फल बढ़ा दें। एक-दो दिन एक समय केवल रोटी, सब्जी, सलाद लें तथा दूसरे समय केवल फल लें। एकसे तीन दिन फलाहार, फिर एकसे तीन दिन रसाहार, पुन: एकसे तीन दिन नीबूका पानी, शहदपर रहें। रोगीकी शारीरिक, मानसिक अवस्थाको देखते हुए दो-तीन दिनतक संतरेके रसपर रहकर सीधे उपवासपर आ जाय।

उपवासके दौरान मल सूख जाता है। उपवासके पहले अर्द्धशङ्ख-प्रक्षालन या नाशपाती, आँवला, करेलेके रससे पेटको पूर्ण साफ कर लेना चाहिये। उपवासके दौरान एनिमा, मिट्टी-पट्टी, मालिश, धूप-स्नान, टहलना, आसन, प्राणायाम, कुञ्जल आदि चिकित्सारोगके अनुसार लें। इस दौरान एक घंटेके अन्तरालपर एक गिलास पानीमें एक नीबू निचोड़कर पीते रहें।

उपवास तोड़नेकी विधि—लम्बे उपवासमें एक-दो दिन कुछ परेशानी अवश्य होती है, फिर कोई कठिनाई नहीं होती। लम्बा उपवास करना जितना सरल है, तोड़ना उससे ज्यादा कठिन है। यदि वैज्ञानिक ढंगसे उपवास नहीं तोड़ा जाय तो अनिष्ट होकर मृत्यु भी हो सकती है। उपवास तोड़ते समय शीघ्र पाचक फलोंके रसमें पानी मिलाकर लें, ताकि पाचन-तन्त्र भोजन ग्रहण करनेकी आदत डाल सके। संतरेके १२५ मि०ली० रसमें १०० मि०ली० जल मिलाकर धीरे-धीरे चूसकर पियें। दो-तीन घंटेके अन्तरसे जल-मिश्रित रस लेते रहे। संतरा उपलब्ध नहीं हो तो एक नीबूका रस तथा दो चम्मच शहदमें एक गिलास पानी मिलाकर पियें अथवा बीस-तीस मुनक्का, किशमिश भिगो-मसल-छानकर पानी मिलाकर लें। दूसरे दिनसे रस या सब्जियोंके सूप

(परवल, लौकी, टिण्डा, तोरई, टमाटर आदि)-की मात्रा धीरे-धीरे बढ़ाते जायँ तथा क्रमशः उबली सब्जी, फल, चपातीकी पपड़ी, पतला दलिया लें। संतरा, पपीता, अंगूर, टमाटर, सेब, केला आदि फल उत्तम हैं। जितने दिन उपवास करें कम-से-कम उतने ही दिन सामान्य आहारपर आनेमें लगना चाहिये। उपवास-काल एवं उपवास तोड़नेके समय पर्याप्त मात्रामें पानी पीना अत्यन्त आवश्यक है। पानी नहीं पीनेसे विजातीय तत्त्व बाहर नहीं निकल पाते एवं तरह-तरहके उपद्रव होने लगते हैं।

निषेध—गर्भिणी स्त्री, दुग्धावस्था (बच्चा दूध पीता हो ऐसी स्त्री), कमजोर, बालक, हृदय-रोगी, मधुमेह, राजयक्ष्मा (टी०बी०)-का रोगी, कृश व्यक्ति, सुकोमल प्रकृतिके व्यक्तिको लम्बे उपवास नहीं करने चाहिये।

लाभ—पेटके समस्त रोग—दमा, गठिया, आमवात, संधिवात, त्वक्विकार, चर्मरोग, मोटापा आदि जीर्ण रोगोंमें उपवास एक सर्वोत्तम निसर्गोपचार है।

दीर्घ उपवास हमेशा किसी विशेषज्ञके निर्देशनमें ही करना चाहिये।

हस्त-मुद्रा-चिकित्सा

(डॉ० श्रीसत्यनारायणजी बाहेती)

मानव-शरीर अनन्त रहस्योंसे भरा हुआ है। शरीरकी अपनी एक मुद्रामयी भाषा है, जिसे करनेसे शारीरिक स्वास्थ्य-लाभमें सहयोग प्राप्त होता है। यह शरीर पञ्चतत्त्वोंके योगसे बना है। पाँच तत्त्व ये हैं—(१) पृथ्वी, (२) जल, (३) अग्नि, (४) वायु एवं (५) आकाश। शरीरमें जब भी इन तत्त्वोंका असंतुलन होता है, रोग पैदा हो जाते हैं। यदि हम इनका संतुलन करना सीख जायँ तो बीमार हो ही नहीं सकते एवं यदि हो भी जायँ तो इन तत्त्वोंको संतुलित करके आरोग्यता वापस ला सकते हैं।

हस्त-मुद्रा-चिकित्साके अनुसार हाथ तथा हाथोंकी अँगुलियों और अँगुलियोंसे बननेवाली मुद्राओंमें आरोग्यका राज छिपा हुआ है। हाथकी अँगुलियोंमें पञ्चतत्त्व प्रतिष्ठित हैं।

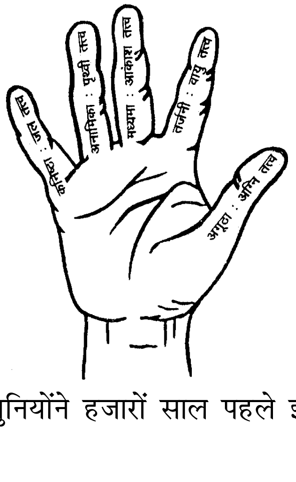

ऋषि-मुनियोंने हजारों साल पहले इसकी खोज कर ली थी एवं इसे उपयोगमें बराबर प्रतिदिन लाते रहे, इसीलिये वे लोग स्वस्थ रहते थे। ये शरीरमें चैतन्यको अभिव्यक्ति देनेवाली कुंजियाँ हैं।

मनुष्यका मस्तिष्क विकसित है, उसमें अनन्त क्षमताएँ हैं। ये क्षमताएँ आवृत हैं, उन्हें अनावृत करके हम अपने लक्ष्यको पा सकते हैं।

नृत्य करते समय भी मुद्राएँ बनायी जाती हैं, जो शरीरकी हजारों नसों एवं नाडियोंको प्रभावित करती हैं और उनका प्रभाव भी शरीरपर अच्छा पड़ता है।

हस्त-मुद्राएँ तत्काल ही असर करना शुरू कर देती हैं। जिस हाथमें ये मुद्राएँ बनाते हैं, शरीरके विपरीत भागमें उनका तुरंत असर होना शुरू हो जाता है। इन सब मुद्राओंका प्रयोग करते समय वज्रासन, पद्मासन अथवा सुखासनका प्रयोग करना चाहिये।

इन मुद्राओंको प्रतिदिन तीससे पैंतालीस मिनटतक करनेसे पूर्ण लाभ होता है। एक बारमें न कर सके तो दो-तीन बारमें भी किया जा सकता है।

किसी भी मुद्राको करते समय जिन अँगुलियोंका कोई काम न हो उन्हें सीधी रखे।

वैसे तो मुद्राएँ बहुत हैं पर कुछ मुख्य मुद्राओंका वर्णन यहाँ किया जा रहा है, जैसे—

(१) ज्ञान-मुद्रा

विधि—अँगूठेको तर्जनी अँगुलीके सिरेपर लगा दे। शेष तीनों अँगुलियाँ चित्रके अनुसार सीधी रहेंगी।

लाभ—स्मरण-शक्तिका विकास होता है और ज्ञानकी वृद्धि होती है, पढ़नेमें मन लगता है, मस्तिष्कके स्नायु मजबूत होते हैं, सिर-दर्द दूर होता है तथा अनिद्राका नाश, स्वभावमें परिवर्तन, अध्यात्म-शक्तिका विकास और क्रोधका नाश होता है।

सावधानी—खान-पान सात्त्विक रखना चाहिये, पान-पराग, सुपारी, जर्दा इत्यादिका सेवन न करे। अति उष्ण और अति शीतल पेय पदार्थोंका सेवन न करे।

(२) वायु-मुद्रा

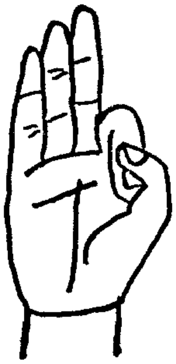

विधि—तर्जनी अँगुलीको मोड़कर अँगूठेके मूलमें लगाकर हलका दबाये। शेष अँगुलियाँ सीधी रखे।

लाभ—वायु शान्त होती है। लकवा, साइटिका, गठिया, संधिवात, घुटनेके दर्द ठीक होते हैं। गर्दनके दर्द, रीढ़के दर्द तथा पारकिंसन्स रोगमें फायदा होता है।

विशेष—इस मुद्रासे लाभ न होनेपर प्राण-मुद्रा (संख्या १०)-के अनुसार प्रयोग करे।

सावधानी—लाभ हो जानेतक ही करे।

(३) आकाश-मुद्रा

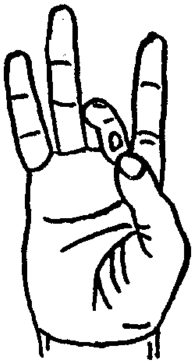

विधि—मध्यमा अँगुलीको अँगूठेके अग्रभागसे मिलाये। शेष तीनों अँगुलियाँ सीधी रहें।

लाभ—कानके सब प्रकारके रोग जैसे बहरापन आदि, हड्डियोंकी कमजोरी तथा हृदय-रोग ठीक होता है।

सावधानी—भोजन करते समय एवं चलते-फिरते यह मुद्रा न करे। हाथोंको सीधा रखे। लाभ हो जानेतक ही करे।

(४) शून्य-मुद्रा

विधि—मध्यमा अँगुलीको मोड़कर अँगुष्ठके मूलमें लगाये एवं अँगूठेसे दबाये।

लाभ—कानके सब प्रकारके रोग जैसे बहरापन आदि दूर होकर शब्द साफ सुनायी देता है, मसूढ़ेकी पकड़ मजबूत होती है तथा गलेके रोग एवं थायरायड-रोगमें फायदा होता है।

(५) पृथ्वी-मुद्रा

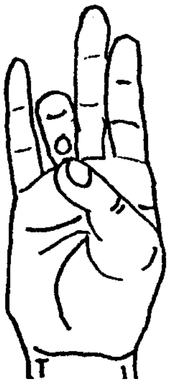

विधि—अनामिका अँगुलीको अँगूठेसे लगाकर रखे।

लाभ—शरीरमें स्फूर्ति, कान्ति एवं तेजस्विता आती है। दुर्बल व्यक्ति मोटा बन सकता है, वजन बढ़ता है, जीवनी शक्तिका विकास होता है। यह मुद्रा पाचन-क्रिया ठीक करती है, सात्त्विक गुणोंका विकास करती है, दिमागमें शान्ति लाती है तथा विटामिनकी कमीको दूर करती है।

(६) सूर्य-मुद्रा

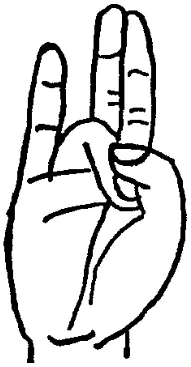

विधि—अनामिका अँगुलीको अँगूठेके मूलपर लगाकर अँगूठेसे दबाये।

लाभ—शरीर संतुलित होता है, वजन घटता है, मोटापा कम होता है। शरीरमें उष्णताकी वृद्धि, तनावमें कमी, शक्तिका विकास, खूनका कोलस्ट्रॉल कम होता है। यह मुद्रा मधुमेह, यकृत् (जिगर)-के दोषोंको दूर करती है।

सावधानी—दुर्बल व्यक्ति इसे न करे। गर्मीमें ज्यादा समयतक न करे।

(७) वरुण-मुद्रा

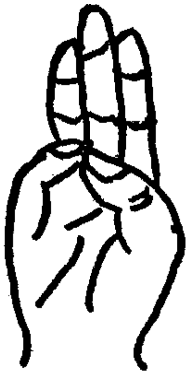

विधि—कनिष्ठा अँगुलीको अँगूठेसे लगाकर मिलाये।

लाभ—यह मुद्रा शरीरमें रूखापन नष्ट करके चिकनाई बढ़ाती है, चमड़ी चमकीली तथा मुलायम बनाती है। चर्म-रोग, रक्त-विकार एवं जल-तत्त्वकी कमीसे उत्पन्न व्याधियोंको दूर करती है। मुँहासोंको नष्ट करती और चेहरेको सुन्दर बनाती है।

सावधानी—कफ-प्रकृतिवाले इस मुद्राका प्रयोग अधिक न करें।

(८) अपान-मुद्रा

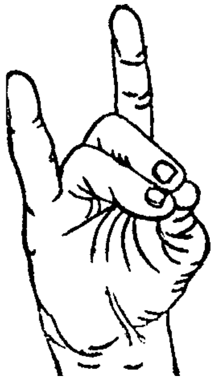

विधि—मध्यमा तथा अनामिका अँगुलियोंको अँगूठेके अग्रभागसे लगा दे।

लाभ—शरीर और नाडीकी शुद्धि तथा कब्ज दूर होता है। मल-दोष नष्ट होते हैं, बवासीर दूर होता है। वायु-विकार, मधुमेह, मूत्रावरोध, गुर्दोंके दोष, दाँतोंके दोष दूर होते हैं। पेटके लिये उपयोगी है, हृदय-रोगमें फायदा होता है तथा यह पसीना लाती है।

सावधानी—इस मुद्रासे मूत्र अधिक होगा।

(९) अपान वायु या हृदय-रोग-मुद्रा

विधि—तर्जनी अँगुलीको अँगूठेके मूलमें लगाये तथा मध्यमा और अनामिका अँगुलियोंको अँगूठेके अग्रभागसे लगा दे।

लाभ—जिनका दिल कमजोर है, उन्हें इसे प्रतिदिन करना चाहिये। दिलका दौरा पड़ते ही यह मुद्रा करानेपर आराम होता है। पेटमें गैस होनेपर यह उसे निकाल देती है। सिर-दर्द होने तथा दमेकी शिकायत होनेपर लाभ होता है। सीढ़ी चढ़नेसे पाँच-दस मिनट पहले यह मुद्रा करके चढ़े। इससे उच्च रक्तचापमें फायदा होता है।

सावधानी—हृदयका दौरा आते ही इस मुद्राका आकस्मिक तौरपर उपयोग करे।

(१०) प्राण-मुद्रा

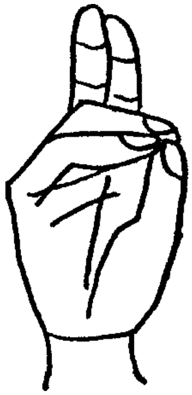

विधि—कनिष्ठा तथा अनामिका अँगुलियोंके अग्रभागको अँगूठेके अग्रभागसे मिलाये।

लाभ—यह मुद्रा शारीरिक दुर्बलता दूर करती है, मनको शान्त करती है, आँखोंके दोषोंको दूर करके ज्योति बढ़ाती है, शरीरकी रोग-प्रतिरोधक शक्ति बढ़ाती है, विटामिनोंकी कमीको दूर करती है तथा थकान दूर करके नवशक्तिका संचार करती है। लंबे उपवास-कालके दौरान भूख-प्यास नहीं सताती तथा चेहरे और आँखों एवं शरीरको चमकदार बनाती है। अनिद्रामें इसे ज्ञान-मुद्रा (संख्या १)-के साथ करे।

(११) लिङ्ग-मुद्रा

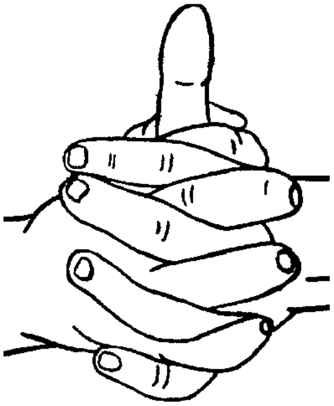

विधि—चित्रके अनुसार मुट्ठी बाँधे तथा बायें हाथके अँगूठेको खड़ा रखे, अन्य अँगुलियाँ बँधी हुई रखे।

लाभ—शरीरमें गर्मी बढ़ाती है। सर्दी, जुकाम, दमा, खाँसी, साइनस, लकवा तथा निम्न रक्तचापमें लाभप्रद है, कफको सुखाती है।

सावधानी—इस मुद्राका प्रयोग करनेपर जल, फल, फलोंका रस, घी और दूधका सेवन अधिक मात्रामें करे। इस मुद्राको अधिक लम्बे समयतक न करे।

पुनर्नवादारुशुण्ठीक्वाथे मूत्रे च केवले। दशमूलरसे वाऽपि गुग्गुलः शोथनाशनः॥

(चक्रदत्त)

पुनर्नवा, देवदारु तथा सोंठके काढ़े या केवल गोमूत्र या दशमूलके काढ़ेको गुग्गुल मिलाकर पीनेसे शोथ दूर होता है।

कायोत्सर्ग और स्वास्थ्य

(आचार्य महाप्रज्ञ)

अध्यात्मके क्षेत्रमें अनेक प्रयोग आविष्कृत हुए, उनमें कायोत्सर्ग आधारभूत प्रयोग रहा। कायोत्सर्गके होनेपर दूसरे प्रयोग सहज सिद्ध हो जाते हैं। इसके अभावमें कोई भी प्रयोग पूरा सफल नहीं बनता। इसलिये कायोत्सर्गको अध्यात्म-साधनाकी आधारशिला कहा गया है। ध्यानके सारे प्रयोग कायोत्सर्गसे प्रारम्भ होते हैं।

कायोत्सर्गका प्रयोग बहुत व्यापक है। हठयोगका शब्द है—शवासन अर्थात् मुर्देकी तरह हो जाना। कायोत्सर्ग जैनयोगका शब्द है। इसमें मुर्दा-जैसा नहीं बनना है, बल्कि कायाका उत्सर्ग करना है। कायोत्सर्गमें शारीरिक प्रवृत्तियोंका शिथिलीकरण होता है। केवल यही नहीं, चैतन्यके प्रति जागरूकता भी होती है। कायोत्सर्गका सबसे प्रधान सूत्र है—ममत्वका विसर्जन। जबतक ममत्वकी ग्रन्थि प्रबल रहती है, अध्यात्मकी साधना भी नहीं होती और शारीरिक-मानसिक बीमारियोंके लिये एक पृष्ठभूमि भी तैयार रहती है। कोई भी शरीर या मनकी बीमारी किसी ग्रन्थिकी प्रबलताके कारण ही आ सकती है, पनप सकती है और अपना डेरा जमा सकती है। सबसे बड़ी बात है ममत्वका विसर्जन। शरीरके प्रति हमारी आसक्ति न रहे तो शरीर अधिक काम देता है। उसके प्रति आसक्ति बढ़ती है तो फिर वह भी बीमारियोंका साथ देने लग जाता है।

विकसित होती है अल्फा-तरंग— भगवान् महावीरका एक वचन बहुत महत्त्वपूर्ण है—'कायोत्सर्ग सब दु:खोंका मोक्ष करनेवाला है, सब दु:खोंसे छुटकारा देनेवाला है।' यह एक छोटा-सा सूत्र है, पर इसकी मर्मस्पर्शी व्याख्या करना बड़ी कठिन बात है। कायोत्सर्ग सब दु:खोंसे छुटकारा कैसे दे सकता है? यदि विज्ञानके संदर्भमें इसे हम समझनेका प्रयत्न करें तो बात कुछ समझमें आ सकती है। मस्तिष्ककी कई तरंगें हैं—अल्फा, बीटा, थीटा तथा गामा आदि। जब-जब अल्फा-तरंग संचरित होती है, मानसिक तनावसे मुक्ति मिलती है, शान्ति प्रस्फुटित होती है। कायोत्सर्गकी स्थितिमें अल्फा-तरंगको विकसित होनेका मौका मिलता है। कायोत्सर्ग किया और अल्फा-तरंगें उठने लग जायँगी, मानसिक तनाव घटना आरम्भ हो जायगा। ई०सी०जी० करनेवाला निर्देश देता है कि शरीरको बिलकुल ढीला छोड़कर सो जाओ। दाँत निकालते समय डॉक्टर सुझाव देता है कि जबड़ेको बिलकुल ढीला छोड़ दो। जबड़ा भिंचा रहा तो दाँत नहीं निकल पायेगा और दर्द भी ज्यादा होगा। दर्दको मिटाना है, दर्दको कम करना है तो कायोत्सर्ग अनिवार्य है।

तनाव और दर्द— वैज्ञानिक दृष्टिकोणसे हम इसकी व्याख्या करते हैं। अभी जो नयी खोज हुई है, वह यह है कि रसायनके द्वारा हम पीडाको दूर कर सकते हैं। हमारे मस्तिष्कमें, सुषुम्णामें अनेक रसायन पैदा होते हैं जो पीडाको कम कर देते हैं। जब-जब व्यक्ति गहरी भक्तिमें डूबता है, वैराग्य-भावना बढ़ती है; ध्यानकी गहरी स्थिति बनती है तो वह रोगजनित पीडाको भूल जाता है। यही पीडा कायोत्सर्गकी स्थितिमें शामक दशा बनती है। कायोत्सर्गकी स्थितिमें हर पीडा कम हो जायगी। इस संदर्भमें महावीरका यह वचन—'कायोत्सर्ग सब दु:खोंको शान्त करनेवाला है'—कितना मूल्यवान् और महत्त्वपूर्ण है! जहाँ भी तनाव आयगा, दर्द बढ़ जायगा। तनाव और दर्दका गहरा सम्बन्ध है। जैसे ही तनाव कम होगा, पीडा कम हो जायगी। शरीरको ढीला करो, शिथिल करो, पीडा विलीन हो जायगी। जो रसायन हमारे शरीरमें पैदा होते हैं, उन्हें पैदा करनेके लिये कायोत्सर्ग सबसे महत्त्वपूर्ण प्रयोग है।

संजीवनी बूटी— कायोत्सर्ग-शतक इसपर बहुत अच्छा प्रकाश डालनेवाला ग्रन्थ है। इसमें कायोत्सर्गके विषयमें महत्त्वपूर्ण सूचना मिलती है। इससे लाभ क्या है? इस सम्बन्धमें कहा गया है—'इससे देह और मतिकी जडताका शोधन होता है।' आज विज्ञानके युगमें देहयुक्त जडताको शान्त करे तो बहुत सारी नयी बातें आ जाती हैं। कायोत्सर्गके द्वारा रक्त-विकार तथा मोह शान्त हो जाता है। विकारकी जो बीमारी है, कायोत्सर्गमें वह शान्त हो

जायगी। रक्तचापके लिये कायोत्सर्ग संजीवनी बूटीका काम करता है। जिन्हें रक्तचाप था, प्रेक्षाध्यान शिविर-कालमें उनसे कायोत्सर्गका प्रयोग करवाया गया। परिणाम यह हुआ कि जिनका रक्तचाप १७० था, आधे घंटेके कायोत्सर्गमें १४० पर आ गया। आधे घंटेमें इतना अन्तर आ जाता है, यदि दीर्घकालतक करे तो बहुत अन्तर आ सकता है। दीर्घकालतक कायोत्सर्गकी एक पद्धति रही है। गम्भीर मानसिक बीमारीके लिये बताया गया—पहले दिन पूरा कायोत्सर्ग, दिन-रातका कायोत्सर्ग। दूसरे दिन उससे कुछ कम। तीसरे दिन पुनः अहोरात्र कायोत्सर्ग और चौथे दिन कुछ कम। यह क्रम बराबर चले। नौ दिनका यह क्रम होता है। इस क्रमसे प्रयोग करे तो गम्भीर मानसिक बीमारी शान्त हो जायगी।

कायोत्सर्गकी एक लम्बी प्रक्रिया है। एक दिनका, दो दिनका और बारह दिनका कायोत्सर्ग। यह दीर्घकालिक कायोत्सर्ग रक्तचाप और हृदयरोगके लिये बड़ा कल्याणकारी है। हृदय, मस्तिष्क और मेरुदण्डके लिये बहुत उपयोगी है। इन तीनोंको आराम देना कायोत्सर्गका मुख्य प्रयोजन है। ये तीनों स्वस्थ हैं तो सब कुछ ठीक है। मस्तिष्क, हृदय और मेरुदण्ड ठीक काम कर रहा है तो स्वास्थ्यकी काफी सुविधा हो जाती है। मानसिक तनाव और इससे उत्पन्न विकृतिके लिये कायोत्सर्ग-जैसा कोई महत्त्वपूर्ण उपाय या चिकित्साकी दूसरी पद्धति नहीं है। मनश्चिकित्सकके पास रोगी जाता है तो चिकित्सक सबसे पहले सुझाव देता है—'तुम बिलकुल ढीले होकर सो जाओ।' मांसपेशियोंकी, मस्तिष्कीय स्नायुओंकी और पूरे शरीरकी शिथिलताकी स्थितिमें प्राणका संतुलन हो जाता है। प्राणका संतुलन कायोत्सर्गकी मुद्रामें होता है।

प्राण-संतुलनका प्रयोग—असंतुलित प्राण अनेक बीमारियोंके लिये उत्तरदायी है। प्राणके असंतुलनकी बीमारीको अभी मेडिकल साइंसने भी नहीं पकड़ा है। जहाँ भी प्राण-ऊर्जा अधिक एकत्रित हो गयी, वहाँ कोई-न-कोई गड़बड़ी वह अवश्य पैदा करेगी। शरीरमें प्राण-ऊर्जा संतुलित रहनी चाहिये तथा नाडियोंमें प्राण-ऊर्जाका प्रवाह भी संतुलित होना चाहिये। जहाँ ऊर्जा ज्यादा एकत्रित हुई, वहाँ समस्या पैदा हो गयी। मनुष्यके कामकेन्द्रमें ज्यादा इकट्ठा हुई तो काम-वासना प्रबल हो जायगी और उसे सहन करना कठिन हो जायगा। जहाँ भी प्राण-ऊर्जा आवश्यकतासे अधिक होगी, वहाँ बीमारी पैदा कर देगी। नाभिमें ज्यादा हो गयी तो क्रोध आने लग जायगा, चिड़चिड़ापन बढ़ जायगा, अनेक विकृतियाँ पैदा हो जायँगी। प्राणका संतुलन रहे तो व्यक्ति अनेक विकृतियोंसे बच सकता है। प्राण-संतुलनका एक सुन्दर उपाय है—कायोत्सर्ग। जहाँ शिथिलता होती है, वहाँ प्राण-ऊर्जाका असंतुलन संतुलनमें बदल जाता है। प्राणका प्रवाह अपने-आप ठीक हो जाता है।

प्राण-संतुलनका एक उपाय है—मन्द श्वास। श्वासको मन्द करना बहुत आवश्यक है। अच्छे स्वास्थ्यके लिये एक बड़ी शर्त यह है कि श्वास कभी तेज न हो। कायोत्सर्ग करे, श्वास अपने-आप मन्द हो जायगा। इसे करनेसे पूर्व श्वासकी संख्याका माप करे और दस मिनटके बाद पुनः श्वासकी संख्याका माप करे तो पायेंगे कि श्वासकी संख्या कम—मन्द हो गयी है। प्राणका संतुलन, श्वासको मन्द करना—यह सब कायोत्सर्गकी अवस्थामें सहज प्राप्त होते हैं।

अनिद्रा, थकान और कायोत्सर्ग—अनिद्रा-रोग आज बहुत व्यापक हो रहा है। नींद नहीं आती, बड़ी समस्या रहती है। कायोत्सर्ग नींदकी सर्वोत्तम गोली है। जिन्होंने ठीकसे कायोत्सर्ग साधा है, अनिद्रा-रोग उन्हें कभी नहीं सतायेगा। थकान भी एक बड़ी समस्या है। बहुत-सी बीमारियाँ थकानके कारण पैदा होती हैं। अधिक मानसिक श्रम किया, मस्तिष्क थक गया। बहुत ज्यादा शारीरिक श्रम किया, शरीर थक गया। हृदयसे ज्यादा काम लिया, हृदय थक गया। किडनीसे ज्यादा काम लिया, किडनी थक गयी। लीवरसे ज्यादा काम लिया तो वह थक गया। शारीरिक अथवा आङ्गिक जो थकान होती है, वह बीमारीको पैदा करती है। कायोत्सर्ग थकानको मिटानेका बहुत अच्छा उपाय है। यदि आपको थकान है तो पाँच मिनट कायोत्सर्गमें चले जायँ, थकान एकदम मिट जायगी।

खिंचाव और शिथिलीकरण—योगासन-पद्धतिमें विधान किया गया है—आसन करो। आसनका काम है खिंचाव—

तनाव पैदा करना। मांसपेशियोंको तनाव देना बहुत आवश्यक है। किंतु इन्हें तनाव देनेके बाद ढीला छोड़ दो। यह स्वास्थ्यका बहुत महत्त्वपूर्ण सूत्र है—खिंचाव दो और शिथिलीकरण करो। यह विधान रहा—सर्वाङ्ग-आसन करो, उसके बाद विपरीत-आसन—मत्स्यासन करो। उसके अन्तरालमें एक मिनटका कायोत्सर्ग करो। भुजङ्गासन या कोई दूसरा आसन करो तो बीचमें एक मिनटका कायोत्सर्ग करो। प्रत्येक आसनके बाद एक मिनटका कायोत्सर्ग। तनाव-ही-तनाव देते रहे तो आसन भी खराबी पैदा करेंगे। हमारा हृदय भी निरन्तर नहीं चलता है। हृदय बहुत अच्छा कायोत्सर्ग करता है। एक क्षण वह चलता है और एक क्षण बाद कायोत्सर्गमें चला जाता है। ऐसा करनेसे ही वह चौबीस घंटे धड़क पाता है। यदि कायोत्सर्ग न करे तो इतना काम नहीं कर सकता।

स्वास्थ्यका महत्त्वपूर्ण सूत्र है—खिंचाव और शिथिलीकरण। कायोत्सर्ग विश्राम देनेवाला है। यह शरीर और मन—दोनोंको विश्राम देता है। हमारी शारीरिक और मानसिक प्रणालीको स्वस्थ रखनेका महत्त्वपूर्ण सूत्र है—कायोत्सर्ग। मनपर भी कितना भार होता है! कोई गधा, बैल, ऊँट जितना भार नहीं ढोता, उससे ज्यादा भारवाहक मन है। एक छोटी-सी घटना घटी और चली गयी, किंतु उसका भार मनों-टनोंसे भी ज्यादा हो जाता है। इतना भार हमारा मन और मस्तिष्क ढोता है। वह भार कैसे मिटाया जाय? इसके लिये बहुत सुन्दर प्रयोग है—कायोत्सर्ग।

भार-विशोधन—पूछा गया—'भन्ते! कायोत्सर्गसे क्या होता है?' कहा गया—'जो भार है, उसका विशोधन होता है।' कोई ऐसा आचरण या व्यवहार हो गया, ऐसी कोई घटना हो गयी और उससे मनपर जो बोझ आ गया, उसका विशोधन होता है। प्राचीन कालमें प्रायश्चित्तविधि कायोत्सर्ग ही रही। अमुक व्यवहार अकरणीय हो गया, आठ श्वासोच्छ्वासका कायोत्सर्ग करो। अमुक व्यवहार अकरणीय हो गया, पंद्रह श्वासोच्छ्वासका कायोत्सर्ग, पचीस श्वासोच्छ्वासका कायोत्सर्ग अथवा क्रमशः हजार श्वासोच्छ्वासका कायोत्सर्ग। कायोत्सर्ग एक प्रक्रिया रही है भार-विशोधनकी, प्रायश्चित्तकी। उससे आगे एक और महत्त्वपूर्ण सूचना दी गयी है—जब चित्तकी विशुद्धि हो जाती है, तब वह बोझ उतर जाता है और हृदय पूर्ण शान्त हो जाता है। जैसे अनाजकी बोरी ढोनेवाला उसे ढोते समय बड़े भारका अनुभव करता है, किंतु जब वह उस बोरीको उतारकर विश्राम लेता है तो उसे ऐसा अनुभव होता है, जैसे वह बिलकुल हलका हो गया हो। हमारे आचरणों, व्यवहारों, घटनाओं, परिस्थितियोंका जो दिमागपर मानसिक बोझ होता है, वह कायोत्सर्ग करते ही एकदम हलका हो जाता है। व्यक्ति असीम सुख-शान्तिका अनुभव करता है। शारीरिक, मानसिक तनावसे मुक्ति तथा स्वास्थ्यकी अमूल्य निष्पत्तियाँ और सूचनाएँ इसके द्वारा दी गयीं।

समाधान है संवर—कायोत्सर्गके बिना न मनकी शुद्धि हो सकती है और न दिमागकी। इसका भी एक आध्यात्मिक, तात्त्विक कारण है। आश्रव और संवर—ये दो बातें हैं। आश्रव मानसिक और भावात्मक विकृतिको भी पैदा करता है। जहाँ आश्रव है, वहाँ विकृति पैदा होगी। डॉक्टर कहते हैं—सामने कोई व्यक्ति खाँसता है तो दूसरे व्यक्तिको नाकपर कपड़ा लगा लेना चाहिये। किसीको इन्फेक्शन है तो सामनेवालेको नाकपर कपड़ा लगा लेना चाहिये। डॉक्टर जब ऑपरेशन करता है, नाकपर वस्त्र बाँध लेता है। कारण यही है कि बीमारीका संक्रमण न हो। नाक खुला हुआ है तो श्वासके साथ रोग-कीटाणु भीतर प्रवेश पा जायँगे। नाक बंद कर लो, संवर हो गया। नाकका संवर करना जरूरी है। आश्रव समस्याका मूल और संवर समाधान है। हमारे शरीरमें आश्रव बहुत हैं। आश्रवद्वार खुला हुआ है। शरीरके सारे दरवाजे बंद हों तो मन कुछ नहीं कर सकता। शरीरका योग न मिले तो कुछ नहीं हो सकता। मनोवर्गणाको और वचनवर्गणाको कौन ग्रहण करता है? शरीर करता है। यदि शरीरका कायोत्सर्ग हो जाय, शरीर शिथिल हो जाय तो मनका दरवाजा तथा बीमारियोंका द्वार भी बंद हो जाय। यह तात्त्विक बात हमारे लिये कितनी व्यावहारिक है! जिन भद्रगणोंने बड़ी महत्त्वपूर्ण बात कही—चञ्चलता एक ही है और वह शरीरकी चञ्चलता है। कायाको ठीकसे साध लो तो मन सध जायगा, वाणी और सब बातें सध जायँगी—कितना महत्त्वपूर्ण सूत्र है यह! यदि हम इसका ठीक उपयोग करें, कायाको साध लें, कायसिद्धि कर लें और स्थिर रहना सीख जायँ तो अनेक समस्याओंसे मुक्ति मिल जाय।

रहस्यपूर्ण प्रयोग—कायोत्सर्गका एक प्रकार है ऊर्ध्व

कायोत्सर्ग—खड़े-खड़े कायोत्सर्ग करना। भगवान् महावीरने कायाके उत्सर्गके जो प्रकार बतलाये, उनमें एक है ऊर्ध्व कायोत्सर्ग। इससे एक रहस्य प्रकट होता है। ऊर्ध्व कायोत्सर्गद्वारा प्राण-ऊर्जा संतुलित बन जाती है, कहीं अधिक इकट्ठी नहीं हो पाती। ब्रह्मचर्यकी सिद्धिका यह रहस्यपूर्ण प्रयोग है। इसका रहस्य यह है कि जिसमें रागात्मक प्रवृत्ति है, वह ज्यादा बैठना नहीं चाहता। जिसमें द्वेषात्मक प्रवृत्ति है, वह ज्यादा चलना नहीं चाहता। यह ऑपन साइंसका नियम है। रागात्मक प्रवृत्तिके लिये गमनयोगका संयम अपेक्षित है। कितना रहस्यपूर्ण सूत्र है यह! यह ऊर्ध्व-स्थान ब्रह्मचर्यकी साधनाका महत्त्वपूर्ण सूत्र है। बैठकर कायोत्सर्ग करनेसे गुरुत्वाकर्षण कम हो जाता है। खड़े होकर कायोत्सर्ग करनेसे गुरुत्वाकर्षण बहुत कम हो जाता है। जब गुरुत्वाकर्षण बढ़ जाता है, तब गुरुत्वाकर्षण भी भार पैदा करता है। कायोत्सर्गकी अवस्थामें बैठे हैं तो गुरुत्वाकर्षण कम हो जायगा। लेटकर कायोत्सर्ग करें तो भी यही स्थिति बनती है। यह सामान्य प्रकार है। कायोत्सर्गके दो प्रकार और भी हैं—वाम-पार्श्व-शयन कायोत्सर्ग और दक्षिण-पार्श्व-शयन कायोत्सर्ग। बायीं और दायीं करवट लेटकर कायोत्सर्ग करना।

इस प्रकार कायोत्सर्गकी अनेक निष्पत्तियाँ और परिणतियाँ हैं। स्वास्थ्यकी, मनके बोझको उतारनेकी, मानसिक और शारीरिक तनावको कम करनेकी दृष्टिसे विचार करें तो कायोत्सर्गके नये-नये पहलू हमारे सामने आते हैं। यदि पूछा जाय कि प्रेक्षाध्यानकी पद्धतिमें आधारभूत प्रयोग क्या है तो उत्तर होगा—कायोत्सर्ग। प्रेक्षाध्यानका प्रारम्भ-बिन्दु और अन्तिम-बिन्दु भी कायोत्सर्ग है। आत्माकी साधनाका पहला और अन्तिम बिन्दु भी कायोत्सर्ग है। इसलिये इसे आत्मिक स्वास्थ्यका अमोघ सूत्र भी कहा जा सकता है।　　[प्रे०—श्रीरामनिवासजी अग्रवाल]

यज्ञोपवीतसे स्वास्थ्य-लाभ

(वैद्य श्रीबालकृष्णजी गोस्वामी)

यज्ञोपवीत भारतीय संस्कृतिका मौलिक सूत्र है। इसका सम्बन्ध हमारे आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक जीवनसे है। यज्ञोपवीत अर्थात् जनेऊको 'यज्ञसूत्र' तथा 'ब्रह्मसूत्र' भी कहा जाता है। बायें कन्धेपर स्थित जनेऊ देवभावकी तथा दायें कन्धेपर स्थित पितृभावकी द्योतक है। मनुष्यत्वसे देवत्व प्राप्त करने-हेतु यज्ञोपवीत सशक्त साधन है।

यज्ञोपवीतका हमारे स्वास्थ्यसे बहुत गहरा सम्बन्ध है। हृदय, आँतों तथा फेफड़ोंकी क्रियाओंपर इसका व्यापक प्रभाव पड़ता है। लंदनके 'क्वीन एलिजाबेथ चिल्ड्रेन हॉस्पिटल'के भारतीय मूलके डॉ०एस०आर० सक्सेनाके अनुसार हिन्दुओंद्वारा मल-मूत्र त्यागके समय कानपर जनेऊ लपेटनेका वैज्ञानिक आधार है। ऐसा करनेसे आँतोंकी अपकर्षण गति बढ़ती है, जिससे क़ब्ज़ दूर होती है तथा मूत्राशयकी मांसपेशियोंका संकोच वेगके साथ होता है। कानके पासकी नसें दाबनेसे बढ़े हुए रक्तचापको नियन्त्रित तथा कष्टसे होनेवाली श्वासक्रियाको सामान्य किया जा सकता है।

कानपर लपेटी गयी जनेऊ मल-मूत्र त्यागके बाद अशुद्ध हाथोंको तुरंत साफ करने-हेतु प्रेरित करती है। यज्ञोपवीत धारण करनेके बाद बार-बार हाथ-पैर तथा मुखकी सफाई करते रहनेसे बहुतसे संक्रामक रोग नहीं होते। योगशास्त्रोंमें स्मरणशक्ति तथा नेत्र-ज्योति बढ़ानेके लिये 'कर्णपीडासन' का बहुत महत्त्व है। इस आसनमें घुटनोंद्वारा कानपर दबाव डाला जाता है। कानपर कसकर जनेऊ लपेटनेसे 'कर्णपीडासन'के सभी लाभोंकी प्राप्ति होती है।

इटलीमें 'बारी विश्वविद्यालय'के न्यूरोसर्जन प्रो० एनारीका पिरांजेलीने यह सिद्ध किया है कि कानके मूलमें चारों तरफ दबाव डालनेसे हृदय मजबूत होता है। पिरांजेलीने हिन्दुओंद्वारा कानपर लपेटी गयी जनेऊको हृदयरोगोंसे बचानेवाली ढालकी संज्ञा दी है।